श्री जवाहर किरणावली, किरण-७

श्री जवाहर स्मारक प्रथम पुष्प

(प्रथम खण्ड)

प्रवचनकार

पू० आचार्यश्री जवाहरलालजी म.सा.

सम्पादक

श्री प पूर्णचन्द्र दक, न्यायतीर्थ

प्रकाशक

श्री जवाहर साहित्य समिति, भीनासर

बीकानेर (राजस्थान)

श्री जवाहर

स्मारक

प्रथम

पुष्प

विषय अनुक्रम

प्रकाशक के दो शब्द

महान् क्रान्तिकारी, युगद्रष्टा, युगप्रवर्तक जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलालजी म सा के जनहितकारी व्याख्यानो का जवाहर किरणावली के रूप मे प्रकाशन जैन-साहित्य मे अपना विशेष स्थान रखता है। लगभग सभी किरणावलिया कई-कई बार प्रकाशित की जा चुकी है। यह इस बात का प्रमाण है कि पाठको ने इन्हे कितना अपनाया व सराहा है। सीधी सरल भाषा मे जीवन पर चमत्कारिक असर करने वाले मार्मिक प्रवचनो का यह दिव्य-सग्रह पाठको की माग पर द्वितीय सस्करण के रूप मे प्रकाशित करके हम आत्मिक आनन्द का अनुभव कर रहे हैं।

धर्मनिष्ठ सुश्राविका बहिन श्री राजकु वरबाई मालू, बीकानेर ने श्री जवाहर साहित्य समिति को साहित्य प्रकाशन के लिए धनराशि प्रदान की थी। बहिनश्री की भावना के अनुसार समिति की ओर से साहित्य प्रकाशन का कार्य चल रहा है। इस पुस्तक के द्वितीय सस्करण का प्रकाशन भी इन्ही बहिनश्री की ओर से प्राप्त राशि से किया जा रहा है। सत्साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए बहिनश्री की अनन्य-निष्ठा चिरस्मरणीय रहेगी।

यद्यपि आजकल कागज, छपाई आदि का खर्च काफी बढ गया है और समय को देखते हुए भविष्य मे और भी बढते जाने की सम्भावना है, लेकिन समिति अपनी निर्धारित नीति के अनुसार लागत मूल्य पर ही साहित्य प्रकाशन का कार्य कर रही है ।

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ और उसके द्वारा सचालित जैन आर्ट प्रस का प्रकाशन-काय मे पूरा सहयोग प्राप्त है, जिससे समिति द्वारा अनेक अप्राप्य किरणावलियो के द्वितीय सस्करण प्रकाशित हो चुके हैं और हो रहे हैं । एतदर्थ समिति की ओर से सघ को हार्दिक धन्यवाद है ।

निवेदक

चम्पालाल बांठिया
मत्री—श्री जवाहर साहित्य समिति,
भीनासर (बीकानेर), राजस्थान

९ : वास्तविक शान्ति

"श्री शान्ति जिनेश्वर सायब सोलवां

यह भगवान शान्तिनाथ की प्रार्थना है। भक्त भगवान् से क्या चाहता है ? यह कि 'हे प्रभो ! तू शान्ति का सागर है, तू स्वय शान्ति का स्वरूप है, तेरे मे शान्ति का भण्डार भरा है, मैं अशान्त हू (आशा और तृष्णा के कारण) मुझे शान्ति की आवश्यकता है, अत मेरे शान्ति-रहित हृदय को शान्ति प्रदान कर'।

जिसको शान्ति की जरूरत होती है, जिसके हृदय मे अशान्ति भरी पडी हो, वही व्यक्ति शान्ति की चाहना करता है। पानी की चाह प्यासा ही करता है। रोटी की माग भूखा ही रखता है। जिसमे जिस बात की कमी होती है, वह उसे दूर करना चाहता है। तदनसार भक्त भी भगवान् से कहते हैं (प्रार्थना करते हैं) कि 'हे प्रभो ! तू शान्ति का सागर है, किन्तु मुझ मे अशान्ति है, अत मैं तुझ से शान्ति चाहता हू। यो तो ससार मे शान्ति देने वाले अनेक पदाथ माने हुए हैं। मैंने उन सब पदार्थो को खोजा किन्तु किसी भी पदाथ मे मुझे शान्ति नही मिली। वास्तव मे ससार के किसी भी जड पदार्थ मे शान्ति है ही नही।

यह कहा जा सकता है कि जब प्यास लगी हो तब ठण्डा पानी और भूख लगने पर रोटी मिल जाने से शांति मिलती है और यह प्रत्यक्ष अनुभूत बात भी है। वैसी हालत मे यह कैसे कहा जा सकता है कि ससार के किसी भी पदार्थ मे शान्ति नहीं है? इसका उत्तर यह है कि सयाने लोग शान्ति उसी को कहते है, जिसमें अशान्ति का लवलेश भी न हो। जो शान्ति एकान्तिक और आत्यन्तिक है वही सच्ची शान्ति है। जिस पदार्थ मे एकान्तिक और आत्यतिक शांति नही है, वह शान्तिदायक नही कहा जा सकता। पदार्थों मे शान्ति का आभास होता है, किन्तु शान्ति का वास्तविक स्रोत अन्य ही है। उदाहरण के लिए समझ लीजिये कि किसी को प्यास लगी है और उसने पानी पी लिया है। यदि उसी व्यक्ति को उसी समय पुन पानी पीने के लिए कहा जाय तो क्या वह पानी पीयेगा? नही पीयेगा। यदि पानी में शान्ति है तो वह व्यक्ति पुन पुन पानी पीने से क्यो इन्कार करता है? दूसरी बात-एक बार पानी पीने से उस समय उसकी प्यास बुझ गई थी, उस समय उसने पानी मे शान्ति का अनुभव किया था किन्तु दो एक घण्टा बीत जाने पर वह फिर पानी पीता है या नही? फिर पानी पीने का क्या कारण है? यही कि उस समय पानी पीने से उस समय की प्यास बुझ गई थी लेकिन कायम के लिए उस पानी से प्यास न बुझी थी। कल रोटी खाई थी। क्या आज पुन खानी पड़ेगी? यदि रोटी से भूख मिट जाती है तो पुन क्या खानी पड़ती है! इससे ज्ञान होता है कि रोटी पानी आदि भौतिक पदार्थों में सुख नही है किन्तु सुख का आभास मात्र है। शान्ति नहीं है किन्तु शान्ति का आभास है। ससार के किसी भी पदार्थ म एकान्तिक

या आत्यन्तिक सुख नही है। जब भूख लगी हो तब लड्डू कितने प्यारे लगते है। यदि भूख न हो तो क्या लड्डू खाये जा सकते हैं। भूख मे प्यारे लगने वाले वे ही लड्डू भूख के अभाव मे कितने बुरे लगते हैं ? इस बुरे लगने का कारण क्या है? यह कि अब भूखजन्य दु ख नही है। जब मनुष्य दु खी होता है, तब उसे सासारिक पदार्थो मे शान्ति मालूम देती है। लेकिन जब वह दु ख मिट जाता है, तब सासारिक पदार्थ मे शान्ति नही मालूम पडती बल्कि अशाति जान पडने लगती है। इसी से तो ज्ञानीजन कहते हैं कि सासारिक पदार्थो मे एकान्तिक या आत्यतिक शान्ति नही है। किसी दु ख के समय उनमे शान्ति जान पडती है मगर वास्तव मे ससार के किसी भी पदार्थ मे न पहले सुख था और न अब है। भौतिक पदार्थ शान्ति या सुख के निमित्त कारण अवश्य है। शान्ति का उपादान कारण कुछ अन्य ही है।

भक्त कहता है कि हे प्रभो ! मैंने ससार के समस्त पदार्थो को छानबीन कर खोज डाला किन्तु किसी भी पदार्थ मे शान्ति नही मिली। अत अब मैं तेरी शरण आया हू। और तेरे से शान्ति के लिए प्रार्थना करता हू।

वेदादि ग्रन्थो मे "ॐ शान्ति, शान्ति, शाति" इस प्रकार तीन बार शान्ति का उच्चारण किया गया है। तीन बार शान्ति का उच्चारण इसलिए किया गया है कि आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक इस तरह तीन प्रकार की शान्ति की कामना (चाहना) की गई है। आधिभौतिक शान्ति चाहने का अर्थ यह है कि अभी हमारा

आत्मा शरीर में निवास करता है। अभी आत्मा का काम शरीर की सहायता से चलता है। अभी आत्मा को अतींद्रिय शक्ति प्राप्त नहीं हुई है। इन्द्रियों की सहायता से ही आत्मा जानना, सुनना, देखना आदि क्रियाएं करता है। आत्मा को अतीन्द्रिय शक्ति प्राप्त हो जाय तब की बात अलग है। किन्तु अभी तो अतीन्द्रिय शक्ति न होने से शरीर, आख, कान, नाक, जिह्वा से आत्मा सहायता लेकर अपना निर्वाह करता है।

इस प्रकार यह भौतिक शरीर आत्मा के लिए सहायक है। किन्तु इस भौतिक शरीर के पीछे अनेक भौतिक अशान्तियां लगी हुई हैं। इन भौतिक अशान्तियों को मिटाने के लिए भी शान्ति का उच्चारण किया जाता है और परमात्मा से शान्ति चाही जाती है। इस शरीर को अनेक रोग, दुःख और शस्त्र-घात आदि कारणों से अशान्ति रहती है। शान्ति के उच्चारण द्वारा इन सब कारणों को मिटाकर अशान्ति मिटाना इष्ट है।

यह कहा जा सकता है कि ये आधिभौतिक अर्थात् शारीरिक कष्ट तो अन्य उपायों के द्वारा भी मिटाये जा सकते हैं। जैसे रोग वैद्यराज की शरण लेने से और शस्त्राघात का भय किसी वीर योद्धा की शरण में जाने से। फिर इन दुःखों से बचने के लिए परमात्मा की शरण में जाना और उससे शान्ति की याचना करने की क्या आवश्यकता है? अन्य स्थूल उपायों के होते हुए परमात्मा तक पुकार   की क्या जरूरत है?

इस प्रकार   अपनी शक्ति   जाते
और अनुभव करते   , इस प्र
आदि पैदा या   । मैं

से शान्ति प्राप्त की जायगी तो उनका गुलाम बन जाना पडेगा । वैद्य की सहायता लेने पर पदे-पदे वैद्यराज की आवश्यकता होगी और उनके वश हो जाना पडेगा और वीर योद्धा की सहायता लेने से खुद की शक्ति का भरोसा न होने से कायरता प्राप्त होगी । अत इस प्रकार की अशाति मिटाने के लिए भी परमात्मा की प्रार्थना करना ही उचित मार्ग है । तब किसी ऐसी जगह के ही द्वार क्यो न खटखटाए जाय, जहा हमारी सब अशान्तिया दूर होकर वास्तविक सुख प्राप्त हो । वह स्थान परमात्मा की शरण के सिवा अन्य नही हो सकता । शान्ति का सच्चा और पूर्ण कारण वही है । इस विषय का विशद और विस्तृत वर्णन अनाथी मुनि के चरित्र वर्णन के प्रसग मे समय समय पर किया जायगा । यहा तो केवल इतना ही कहना है कि ज्ञानी लोग परमात्मा के सिवा अन्य किसी से अपने दुख दूर करवाना नही चाहते ।

भगवान् शान्तिनाथ का नाम लेने से शाति कैसे प्राप्त हो सकती है, यह बात कथा द्वारा बताई जाती है । कथा द्वारा बताने से स्त्री-बाल-वृद्ध आदि सब लोग सुगमता से समझ सकेंगे । भगवान शातिनाथ के पिता हस्तिनापुर मे राज्य करते थे । उनका नाम महाराज विश्वसेन था । वे कोरे नाम के ही विश्वसेन न थे किन्तु विश्व को शाति पहुचाने के लिए प्रयत्न किया करते थे । वे सम्पूर्ण-ससार के मित्र थे । वे रात दिन सोचा करते थे कि मैं अच्छे-अच्छे पदार्थ भोगने के लिए राजा नही बना हू किन्तु मुझ मे जो शक्ति मौजूद है, वह खर्च करके प्रजा को शाति पहुचा सकू तब सच्चा राजा कहलाऊ । वे हर क्षण ससार को शाति

पहुँचाने का विचार किया करते थे। यही कारण है कि उनके यहाँ साक्षात् शांति के अवतार भगवान् शांतिनाथ का जन्म हुआ था।

महाराजा विश्वसेन के विचारों पर आप लोग भी गौर कीजिये। आप शान्ति-दायक पुत्र चाहते हैं या अशान्ति-दायक? चाहते तो होंगे आप भी शान्तिदायक पुत्र ही। शांति-दायक पुत्र प्राप्त करने की इच्छा वालों को स्वयं कैसा बनना चाहिए? दूसरों को शान्ति प्रदान करने वाले या दूसरों की शान्ति में अशान्ति उत्पन्न करने वाले? यदि अशान्ति-दायक बनोगे तो पुत्र भी अशान्तिदायक ही उत्पन्न होगा। जैसी बेल होती है उसका फल भी वैसा ही होता है। "बोये पेड़ बबूल के आम कहा ते होय"?

एक आदमी दूसरे देश में गया। उसके देश में इन्द्रायण का फल नहीं होता था। अत उसने कभी वह फल देखा न था। नये देश में इन्द्रायण का फल देख कर वह बहुत प्रसन्न हुआ। प्रशंसा करने लगा कि यह कैसा सुन्दर देश है। यहां जमीन पर पड़ी हुई बेल में ही ऐसे सुन्दर फल लगते हैं। मेरे देश में तो ऊँचे वृक्ष पर ही फल लगते हैं। उस वक्त उसे भूख लग रही थी। अत एक फल तोड़कर खाया। किन्तु फल उसे कड़ुआ लगा। वह थू थू करता हुआ सोचने लगा कि इतने सुन्दर फल में यह कड़ुआपन कहां से आ गया? यह सोचकर कि देखूं फल कड़ुआ है पर पत्ते कैसे हैं? उसने पत्ते चखे। पत्ते भी कड़ुए निकले। फिर उसने फूल चखा। सो वह भी कड़ुआ मालूम हुआ। अन्त में उसने उस बेल का मूल (जड़) चखा। यह दुःख से साथ उसने

अनुभव किया कि उस बेल का मूल भी कडुआ ही था। उस व्यक्ति ने निर्णय किया कि जिसका मूल ही कडुआ होगा, उसके सब अंश कडुए ही होंगे।

साराश यह है कि आप लोग अपने पुत्र को तो शाति-दायक पसन्द करते है किन्तु खुद को भी तपासिये कि आप स्वय कैसे हैं ? कोई अच्छे कपडे पहन कर अच्छा बनना चाहे तो इससे उसकी अच्छा बनने की मुराद पूरी नही हो जाती। कपडो के परिवर्तन करने से या सुन्दर साज सजाने से आत्मा अच्छा नही बन जाता। इससे तो शरीर अच्छा लग सकता है। यदि खुद के आत्मा मे दूसरो को शान्ति पहुचाने का गुण होगा, तभी मनुष्य अच्छा लगेगा और तभी संतान भी शान्तिदायिनी हो सकती है।

महाराजा विश्वसेन सब को शांति पहुचाने के इच्छुक रहते थे। इसी से उनकी रानी अचिरा के गर्भ मे भगवान् शान्तिनाथ ने जन्म धारण किया। जिस समय भगवान् शांति-नाथ गर्भ मे थे उस समय महाराजा विश्वसेन के राज्य मे महामारी का भयकर प्रकोप हुआ। प्रजा महामारी का शिकार होने लगी। यह देख सुन कर महाराजा बहुत चिंतित हुए और विचार करने लगे कि जिस प्रजा की रक्षा और वृद्धि के लिए मैंने इतने कष्ट उठाये हैं, वह किस प्रकार काल-कवलित हो रही है ! मेरी कितनी कमजोरी है कि जो मेरे सामने मरती हुई प्रजा का मैं रक्षण नही कर पाता हूँ ! इस प्रकार महामारी का प्रकोप होना और प्रजा का विनाश होना केवल प्रजा के पापो का ही परिणाम नही है किन्तु मेरे पापो का भी परिणाम है। जो कुछ हो, मुझे पाप करके ही न बैठे रहना चाहिए किन्तु ऐसा प्रयत्न करना

चाहिए कि जिससे प्रजा की रक्षा हो और उसे शान्ति प्राप्त हो। यदि मेरे शरीर से यह कार्य न हो सके तो फिर इस शरीर का धारण करना ही व्यर्थ है। मैं निश्चय करता हूँ कि अब प्रजा में कोई नया रोगी न होगा और जो रोगी हैं, वे जब तक अच्छे न हो जायेंगे तब तक मैं अन्न-जल ग्रहण न करूँगा।

महाराजा विश्वसेन ने इस प्रकार सत्याग्रह या अभिग्रह किया, वह अपने निजी स्वार्थ या हित के लिये नहीं किन्तु जनता के हित के लिए किया था। जनहित के लिए इस प्रकार का दृढ़ निश्चय करके महाराजा परमात्मा के ध्यान में बैठ गये। ध्यान में वह विचारने लगे कि मेरे किस पाप के कारण यह महामारी उपस्थित हुई है और प्रजा मरने लगी है? मेरी किस कमी या असावधानी के कारण प्रजा को यह दुःख सहन करना पड़ रहा है?

जो अपने दुःख को तो दुःख समझता है किन्तु दूसरों के दुःख को महसूस नहीं करता, वह धर्म का अधिकारी नहीं हो सकता। वस्तुतः धर्म का अधिकारी वह है, जो अपने दुःखों की चिन्ता न करे किन्तु दूसरों के दुःखों को दूर करने की कोशिश करे। दूसरों को सुखी देखकर प्रसन्न हो और दुःखी देखकर दुःखी हो, वही सच्चा धर्माधिकारी है। यदि आप धर्मात्मा बनने की ख्वाहिश रखते हैं तो यह निश्चय करिये कि हे दीनानाथ! हम हमारा दुःख सहन कर लेंगे किन्तु अनाथों लोग जो कि दुःख से पछताते हैं, उनको सहन न करेंगे। उसे दूर करने का भरसक प्रयत्न करेंगे। 'अत्त-सम मन्निज्जे छप्पि काय" अर्थात् पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस जिन्हें षट् जीव [illegible] काया है

जीवो को अपनी आत्मा के समान मानना चाहिए। ज्ञानीजन ही यह विचार कर सकता है कि कोई प्राणी दुःख से पीड़ित न हो। अज्ञानी लोग ऐसा विचार नही कर सकते।

महाराजा विश्वसेन अन्न-जल त्याग का अभिग्रह ग्रहण कर के परमात्मा के ध्यान मे तल्लीन होकर बैठे हुए थे। उधर महारानी अचिरा भोजन करने के लिए पतिदेव की प्रतीक्षा कर रही थी। भारतीय सभ्यता के अनुसार पति-व्रता स्त्री पति के भोजन करने के पूर्व भोजन नही करती है। गुजराती भाषा मे कहावत है कि 'माटी पहली वैयर खाय, तेनो जमारो एले जाय'। आज भी भले घरो की स्त्रिया पति के भोजन करने के पहले भोजन नही करती किन्तु पति के भोजन कर चुकने पर भोजन करती हैं।

भोजन करने का समय हो चुका था और भोजन भी तैयार था फिर भी महाराजा के न पधारने से महारानी अचिरा ने दासी को बुलाकर उससे कहा कि तू जाकर महाराजा से अर्ज कर कि भोजन तैयार है। राजा को भोजन निश्चित समय पर ही करना चाहिए ताकि शरीर-रक्षा हो और शरीर-रक्षा होने से प्रजा की भी रक्षा हो सके। दासी महाराजा के पास गई किन्तु उन्हे ध्यान में तल्लीन देखकर बोलने की हिम्मत न कर सकी। साधारण लोगो को तेजस्वी महापुरुषो की ओर देखने की हिम्मत नही होती है। तेजस्वियो के मुख से एक प्रभामण्डल निकलता है जिसके कारण साधारण आदमी उनकी ओर नही देख सकता।

दासी महाराजा विश्वसेन का ध्यान भग न कर सकी। वह दूर से ही धीरे-धीरे कहने लगी कि भोजन तैयार है,

आप आरोगने के लिये पधारिये। उसका शब्द इतना धीमा था कि वह महाराजा के कान मे पडा हो या न पडा हो। महाराजा का ध्यान भग न हुआ। वे तो ध्यान मे यही सोच रहे थे कि हे प्रभो ! मेरे किस पाप के उदय के कारण मेरी प्यारी प्रजा महामारी का शिकार बन रही है ? मैं राजा हूँ ! प्रजा मुझे पिता कहती है, मेरे पैरो पडती है और अपनी शक्ति मुझे सौंपती है। फिर उसका कल्याण न कर सकूं तो मुझ पर बडा भार चढता है।

राजकोट श्री सघ के सेक्रेटरी मुझसे कहने लगे कि महाराज ! आप यहा क्या पधारे हैं, हमारे लिए तो साक्षात् गगा अवतीर्ण हुई है। मैं कहता हूँ कि गगा तो यहां का श्री सघ है। यहा का सघ या समाज मुझको जो मान बडाई प्रदान करता है, उससे मुझ पर भार बढता है, मेरी जिम्मेवारी बढ़ती है। यदि मैं यहाँ की समाज का वास्तविक कल्याण न कर सकू तो आपका दिया हुआ मान मुझ पर भार ही है। आप लोग बैंक में रुपये रखते हैं। बैंक का काम आपके रुपयो की रक्षा करना है। यदि वह रक्षा न करे तो उस पर भार है। बैंक तो कभी दिवाला भी निकाल दे किन्तु क्या हम साधु लोग भी दिवाला निकाल सकते हैं ? आप लोग हम साधुओ के लिए कल्याण मगल आदि शब्द कहते हैं। हमारा ऊपरी साधु भेष देखकर ही आप लोग ऐसा कहते हैं। कल्याण मगल आदि शब्द कहला कर भी यदि हम आपका कल्याण न करें तो सचमुच हम पर भार चढता है। आपके दिए हुए मान के बदले मे हमारा मुख्य कर्तव्य हो जाता है और वह आपके लिए कल्याण कार्य करना ही है। यह तो हम साधुओ की बात हुई। अब आपकी बात

मैं आप लोगो से कहता हूं। आप भी तीर्थ कहलाते हैं। तीर्थ उसे कहते है जो दूसरो को तारे, पार उतारे। दूसरो को वही तार सकता है जो खुद तरता है। जो स्वय न तरता हो वह दूसरो को क्या तारेगा? रेल यदि आप लोगो को अपने मे बैठा कर दूसरी जगह न पहुचाये तो क्या आप उसे रेल कहेंगे? इसी तरह तीर्थ होकर भी यदि दूसरो को न तारो तो तीर्थ कैसे कहला सकते हो। दूसरो को तभी तार सकते हो जब स्वय तिरो।

एक भाई का मुह वासता था। मैंने पूछा, क्या बीडी पीते हो? उसने उत्तर दिया, जी हा पीता हूँ। मेरे पीछे यह दुर्व्यसन लग गया है। मैंने कहा कि भगवान् महावीर के श्रावक होकर आपमे यह कमजोरी कैसी? विना कष्ट सहन किये कोई काय नही होता। कष्ट सहन करके भी यदि इस दुर्व्यसन को तिलाञ्जली दे सको तो इसमे तुम्हारा और हमारा दोनो का कल्याण है। आपके तीर्थंकर के माता पिता जगत् के कल्याण के लिए अन्नजल त्याग देते हैं और आप बीडी जैसी तुच्छ वस्तु को भी न छोड सके, यह मुझ पर कितना भार है? मैं इस विषय मे क्या कहूँ? यदि लोग बीडी पीना छोड दें तो मैं कह सकता हू कि राजकोट का सघ बीडी नही पीता है।

बीडी पीने वाले कहते हैं कि बीडी पीने से दस्त साफ आता है। पेट मे किसी प्रकार की गडबड नही रहती। पहले से लोग पीते आये हैं अत हम भी पीते है। यदि यह कथन ठीक है तो मैं पूछता हूँ कि बहिनें बीडी क्यो नहीं पीती। उन से यदि बीडी पीने के लिए कहा जाय तो वे यही उत्तर देंगी कि हम क्यो पीयें, हमारी बलाय पीये। स्त्रिया तो यो कहती है और आप लोग पगडी बाधने वाले

पुरुष होकर उनकी बलाय बनते हैं। क्या यह ठीक है? पेट साफ रहता है आदि कथन बीड़ी पीने का बहाना मात्र है। बीड़ी पीने से लाभ नहीं होता। बीड़ी न पीने से किसी भी प्रकार की हानि होगी तो इस बात की मैं जिम्मेवारी लेता हूँ। मैं कहता हूँ कि बीड़ी न पीने से किसी भी प्रकार की हानि न होगी। अतः भाइयो! बीड़ी पीना छोड़ दीजिये। डॉक्टरों का कहना है कि तमाखू में निकोटाइन नामक जहर रहता है जो पेट में जाकर भयंकर हानि पहुँचाता है। डॉक्टरों का यह भी कहना है कि एक बीड़ी में जितनी तमाखू होती है यदि उसका अर्क निकाला जाय तो उससे सात मेंढक मर सकते हैं। इस प्रकार हानि पहुँचाने वाली तमाखू से क्या लाभ हो सकता है? हाँ, हानि अवश्य होती है। आप की देखा देखी आपके बच्चे भी बीड़ी पीने लगते हैं। आपके फैंके हुए टुकड़े को उठाकर बच्चे पीते हैं और इस बात की जाँच करते हैं कि हमारे पिताजी जिस बीड़ी को दिन में कई बार पीया करते हैं उसमें क्या मजा रहा हुआ है? बीड़ी त्याग देना ही उचित है। जो लोग बीड़ी नहीं पीते हैं वे धन्यवाद के पात्र हैं। जो पीते हैं उनसे हमारा अनुरोध है कि वे इसे छोड़ दें। बीड़ी दुःख का कारण है। ऐसे दुःख के कारणों को आप परमात्मा के समर्पण करते जाओ। इससे आपकी आत्मा में आनन्द की वृद्धि होगी। मैं दिल्ली से जमना पार गया था। वहां तमाखू पीने का बहुत रिवाज है। यहां तक कि बहुत सी स्त्रियाँ भी बीड़ी पीती हैं। मैंने तमाखू त्यागने का उपदेश दिया। उस उपदेश से हमारे कई श्रावकों ने तमाखू पीना छोड़ दिया। किन्तु मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि एक मुसलमान भी कि जो गावों में हुक्का पीता था यह कहकर कि

जब मेरा मालिक तमाखू नही पीता है, मैं कैसे पी सकता हूँ, तमाखू छोड देता है। जब वह मुसलमान दुबारा मुझ से मिला तब कहने लगा कि महाराज आपके उपदेश से मैंने हुक्का पीना क्या छोड दिया है, गोया एक बीमारी छोड दी है।

बीडी न पीने से रोग रहता है, यदि यह बात ठीक मानी जाय तो बोहरे लोग जोकि बीडी नही पीते हैं, क्या रोगी रहते हैं ? मारवाड मे विश्नोई जाति के लोग रहते हैं, जो न मास खाते, न दारू पीते, न बीडी ही पीते हैं। वे बडे तन्दुरुस्त रहते हैं। वे फुरसत के समय पुस्तकें पढते हैं। किसी भी दुर्व्यसन मे नही फसते। इससे वे बडे सुखी हैं।

कहने का मतलब यह है कि आप लोग दुर्व्यसन त्यागो ! यह न सोचो कि हमारा नाम तीर्थ मे लिखा हुआ ही है, अब हम चाहे जैसे काम किया करे। यह विचार करो कि यदि हम ऐसे दुर्व्यसन को भी न त्यागेगे तो श्रावक नाम कैसे धरायेंगे ? आज मैं इस विषय पर थोडा ही कहता हूँ। बीडी तमाखू पर एक स्वतन्त्र और पूरा व्याख्यान हो सकता है।

महाराजा विश्वसेन का ध्यान दासी की आवाज से नही टूटा। दासी की हिम्मत इससे अधिक कुछ करने की नही हुई। वह महारानी के पास चली गई। महारानी ने पूछा कि आज महाराजा कहाँ व्यस्त हैं ? दासी ने उत्तर दिया कि आज महाराजा बडे गम्भीर बने बैठे हैं। आज की तरह गम्भीर बने हुए महाराजा को मैंने कभी नही देखा। मैं उन का ध्यान भग न कर सकी। यदि उनका

पुरुष होकर उनकी बलाय बनते हैं । क्या यह ठीक है ? पेट साफ रहता है आदि कथन बीडी पीने का बहाना मात्र है । बीडी पीने से लाभ नही होता । बीडी न पीने से किसी भी प्रकार की हानि होगी तो इस बात की मैं जिम्मेवारी लेता हूँ । मैं कहता हूँ कि बीडी न पीने से किसी भी प्रकार की हानि न होगी । अत भाइयो ! बीडी पीना छोड दीजिये । डॉक्टरो का कहना है कि तमाखू मे निकोटाइन नामक जहर रहता है जो पेट मे जाकर भयकर हानि पहुँचाता है । डॉक्टरो का यह भी कहना है कि एक बीडी मे जितनी तमाखू होती है यदि उसका अर्क निकाला जाय तो उससे सात मेढक मर सकते हैं । इस प्रकार हानि पहुँचाने वाली तमाखू से क्या लाभ हो सकता है ? हा, हानि अवश्य होती है । आप की देखा देखी आपके बच्चे भी बीडी पीने लगते हैं । आपके फेंके हुए टुकडे को उठाकर बच्चे पीते हैं और इस बात की जाच करते हैं कि हमारे पिताजी जिस बीडी को दिन मे कई बार पीया करते हैं उसमे क्या मजा रहा हुआ है ? बीडी त्याग देना ही उचित है । जो लोग बीडी नही पीते हैं वे धन्यवाद के पात्र हैं । जो पीते हैं उनसे हमारा अनुरोध है कि वे इसे छोड दें । बीडी दुख का कारण है । ऐसे दुख के कारणो को आप परमात्मा के समर्पण करते जाओ । इससे आपकी आत्मा मे आनन्द की वृद्धि होगी । मैं दिल्ली से जमना पार गया था । वहा तमाखू पीने का बहुत रिवाज है । यहा तक कि बहुत सी स्त्रियाँ भी बीडी पीती हैं । मैंने तमाखू त्यागने का उपदेश दिया । उस उपदेश मे हमारे कई श्रावको ने तमाखू पीना छोड दिया । किन्तु मुझे यह जानकर ताज्जुब हुआ कि एक मुसलमान जो कि साठ सालो से हुक्का पीता था यह कहकर कि

जब मेरा मालिक तमाखू नही पीता है, मैं कैसे पी सकता हूँ, तमाखू छोड देता हूँ। जब वह मुसलमान दुबारा मुझ से मिला तब कहने लगा कि महाराज आपके उपदेश से मैंने हुक्का पीना क्या छोड दिया है, गोया एक बीमारी छोड दी है।

बीडी न पीने से रोग रहता है, यदि यह बात ठीक मानी जाय तो बोहरे लोग जोकि बीडो नही पीते हैं, क्या रोगी रहते हैं ? मारवाड मे विश्नोई जाति के लोग रहते हैं, जो न मास खाते, न दारू पीते, न बीडी ही पीते हैं। वे बडे तन्दुरुस्त रहते हैं। वे फुरसत के समय पुस्तकें पढते है। किसी भी दुर्व्यसन मे नही फसते। इससे वे बडे सुखी हैं।

कहने का मतलब यह है कि आप लोग दुर्व्यसन त्यागो ! यह न सोचो कि हमारा नाम तीर्थ मे लिखा हुआ ही है, अब हम चाहे जैसे काम किया करे। यह विचार करो कि यदि हम ऐसे दुर्व्यसन को भी न त्यागेगे तो श्रावक नाम कैसे धरायेंगे ? आज मैं इस विषय पर थोडा ही कहता हूँ। बीडी तमाखू पर एक स्वतन्त्र और पूरा व्याख्यान हो सकता है।

महाराजा विश्वसेन का ध्यान दासी की आवाज से नही टूटा। दासी की हिम्मत इससे अधिक कुछ करने की नही हुई। वह महारानी के पास चली गई। महारानी ने पूछा कि आज महाराजा कहाँ व्यस्त हैं ? दासी ने उत्तर दिया कि आज महाराजा बडे गम्भीर बने बैठे हैं। आज की तरह गम्भीर बने हुए महाराजा को मैंने कभी नही देखा। मैं उन का ध्यान भग न कर सकी। यदि उनका

ध्यान भग करना है तो आप स्वय पधारिये । आप उनकी अर्धाङ्गिनी हैं अत आपको अधिकार है कि आप उनका ध्यान भी भग कर सकती हैं । मुझ दासी से यह काम नही हो सकता ।

यह बात सुन कर महारानी सोचने लगी कि अवश्य आज महाराजा किसी गहरे विचार-सागर मे डूबे हुए हैं । किसी नये मसले पर विचार करते होगे । उनकी ध्यान मुद्रा को देखकर दासी इतनी चकित हो गई है ।

इस प्रकार विचार कर महारानी स्वय महाराजा के पास चली गई । वे गर्भवती थी । फिर भी इस नियम को नही तोडा कि पति को जीमाये बिना पत्नी नही जीम सकती । गर्भवती होने के कारण रानी भूखी भी नही रह सकती थी । यदि उसका खुद का प्रश्न होता तो वे भूखी भी रह सकती थी किन्तु गर्भ के भूखा रहने का प्रश्न था । गभ का भोजन माता के भोजन पर निर्भर होता है । और गर्भ को भूखा नही रखा जा सकता था ।

यहाँ पर इस प्रसग मे मैं कुछ कहना आवश्यक समझता हूँ । मैं तपस्या करने का पक्षपाती हूँ । लेकिन गर्भवती स्त्री तप करती है, यह मैं ठीक नही समझता । गभ का भोजन माता के भोजन पर निर्भर होता है । जब माता भूखी होती है तब गर्भ को भी भूखा रहना पडता है । वैद्यक शास्त्र मे कहा है कि गर्भ की माता प्रथम पहर मे नही खाती लेकिन द्वितीय पहर का उल्लघन नही कर सकती । इसके उपरान्त गभवती के भूखी रहने से गर्भ पर उससे दया नही

हो सकती। प्रथम अहिंसा व्रत मे 'भत्तपाण वुच्छेए' अर्थात् भोजन और पानी का विच्छेद करना अन्तराय डालना अतिचार कहा गया है। यदि गर्भवती तपस्या करके भूखी रहेगी तो बलात् गर्भ को भी भूखे रहना पडेगा और इस तरह वह गर्भ पर दया नही कर सकती। आप लोग सवत्सरी का उपवास करते हैं। क्या उस दिन घर मे रही हुई गाय को भी उपवास कराते हैं या घास डालते हैं? स्वय चाहे उपवास करो किन्तु गाय को तो घास डालते ही हो। यदि गाय को घास न डालो तो 'भत्तपाण वुच्छेए' नामक अतिचार लगेगा। और इस प्रकार दया का लोप होगा। गर्भवती के भूखा रहने से गर्भ को भूखा रहना पडेगा और इस तरह गर्भ की दया न रहेगी। भगवती सूत्र मे कहा है कि गर्भ का भोजन वही है जो माता का भोजन है। अत गर्भवती को तपस्या करके गर्भ को भूखा नही रखना चाहिए।

महारानी अचिरा महाराज के पास गई। उसने देखा कि महाराज ध्यान-मग्न है। उसने कहा, मेरी सखी ठीक ही कहती थी और ऐसी अवस्था मे उसकी क्या हिम्मत हो सकती थी कि वह महाराजा का ध्यान भग करती? रानी ने अपने अधिकार का ख्याल करके कहा कि हे महाराज! आज आप इस प्रकार ध्यान-मग्न अवस्था मे क्यो बैठे हुए हैं? किस बात की चिंता मे लीन है? चिंता का क्या कारण है? यदि चिंता का कोई कारण है तो वह मुझे बताइये और यदि कारण नहीं है तो चलिये भोजन करिये। भोजन का समय हो चुका है।

महारानी की बात सुन कर महाराज का ध्यान भग हुआ। महारानी को देखकर उन्होने सोचा कि 'महारानी

नीचे खडी रहे और मैं सिंहासन पर बैठा रहूँ, यह ठीक नहीं है। उसी समय उन्होंने भद्रासन मगवाया और उस पर महारानी को बिठाया।

जिस घर मे पति पत्नी को और पत्नी पति को आदर सत्कार नही देते, समझ लेना चाहिए कि उन्होने लग्न का महत्व नही समझा है। जहाँ पारस्परिक आदर सत्कार देने का साधारण नियम भी न पाला जाता हो, वहा अन्य नियमो की बात ही क्या करना? ससार का सब से बडा पाया लग्न पद्धति है। लेकिन आज इस पद्धति की क्या दुर्दशा हो रही?

महाराज ने कहा कि आज मैं किसी विचार मे डूब गया था। अत भोजन करने का भी खयाल न रहा। कहिये आपने तो भोजन कर लिया है न? महारानी ने कहा, क्या मैं आपके पूर्व ही भोजन कर लेती? महाराज ने कहा, हाँ, आप गर्भवती हैं। अत आपको भूखा न रहना चाहिए। हम पुरुष हैं। हम पर राज्य के अनेक कठिन कामो का बोझा है। आप स्त्री हैं और आप पर गर्भ-रक्षा का बडा भारी बोझा है। इसकी हर प्रकार रक्षा करना आपका कर्तव्य है। निमित्तिये ने कहा था कि आपके गर्भ मे महा-पुरुष हैं। अत आपको भूखा न रहना था।

महाराजा की बात के उत्तर मे महारानी ने कहा कि मेरे गर्भ मे महापुरुष हैं तो इसकी चिन्ता आपको भी तो होनी चाहिए। न मालूम आज आप किस चिन्ता में पडे हुए हैं। अपनी चिन्ता का कारण मुझे भी तो बताइये। महाराजा ने कहा कि हे रानी! आज मुझे बहुत बडी

चिंता हो रही है 'प्राण जाय पर प्रण नही जाई' के अनुसार आज मुझे बर्ताव करना है। मुझे प्रजा की रक्षा करने विषयक चिंता है। आप इस चिंता का कारण जानने के उलझन मे न पडो। पहले जाकर भोजन करलो। रानी ने उत्तर दिया कि हे महाराज! जिस प्रकार प्रजा रक्षा के नियम पर आप अटल है, उसी प्रकार मैं भी आपके भोजन किए बिना भोजन न करने के नियम पर अटल हूँ। आप को प्रजा रक्षा की चिंता है मगर कृपा कर के मुझे भी यह बतलाइये कि किस बात के कारण चिंता है? रानी का आग्रह देखकर महाराजा विश्वसेन असमजम मे पड गये। कुछ देर सोच कर बोले कि महारानी! मेरे राज्य मे महामारी रोग फैला हुआ है और प्रजा मर रही है। प्रजा में बहुत भय छाया हुआ है। कौन कब मर जायगा, इस का कुछ भी विश्वास नही है। सारी प्रजा मे त्राहि-त्राहि मची हुई है। अत मैंने प्रतिज्ञा ली है कि जब तक प्रजा का यह कष्ट दूर न होगा, मैं अन्न-जल ग्रहण न करूगा। महारानी ने उत्तर दिया कि जो प्रतिज्ञा आपकी है, वह मेरी भी है। मैं आपकी अर्धाङ्गना हूँ। जो पुरुष स्त्री की शक्ति को विकसित नही होने देता, वह अपनी ही शक्ति का ह्रास करता है। स्त्री को पतिपरायणा और धर्मनिष्ठा बनाने के लिए पति को भी कुछ त्याग करना पडता है। पति को नियमोपनियम का पालन करना पडता है।

महारानी ने कहा-मैं केवल भोजन करने के लिए ही अर्धाङ्गना नही हूँ। किंतु आपके कर्त्तव्य मे हिस्सा बटाने के लिए रानी हूँ। जो जवाबदारी आपके सिर पर है वह मेरे सिर पर भी है। सीता को वनवास करने के लिए किसी

ने नही कहा था। न सीता पर वनवास करने की जिम्मेदारी ही थी। फिर भी सीता वन गई थी क्योंकि उन्होंने यह अनुभव किया था कि जो जबावदारी मेरे पति पर है वह मुझ पर भी है। अत जिस प्रजा को आप पुत्रवत् मानते हैं, वह मेरे लिए भी पुत्रवत् है। जो प्रतिज्ञा आपने ली है, वह मेरे लिए भी है।

रानी का कथन सुनकर महाराजा ने कहा, महारानी, आप गर्भवती हैं। आपके लिए अन्न जल त्यागना ठीक नही है। रानी ने कहा, आप चिन्ता मत करिये। अब प्रजा पर आई हुई आफत गई ही समझिये। रानी के मन में कुछ विचार आये। उन विचारो के सम्बन्ध मे कहने का समय नही है। इतना अवश्य कहता हूँ कि लोग बाहरी बातो का विचार करते हैं और बाहरी बातें ही देखते हैं। किन्तु ख्याल करना चाहिये कि बाहरी बातो के सिवाय आन्तरिक बातें भी हैं और उनका प्रभाव बहुत अधिक है। उन पर विचार करना चाहिये।

'अब आप प्रजा मे से रोग गया ही समझिये' कहकर रानी ने स्नान किया और हाथ मे जलपात्र लेकर महल पर चढ गई। उस समय उनकी आँखो मे अपूर्व ज्योति थी। वे हाथ मे जल लेकर कहने लगी कि यदि मैंने यावज्जीवन पतिव्रता धर्म का पालन किया हो, मेरे गर्भ मे महापुरुष हो, तथा मैंने कभी झूठ कपट का सेवन न किया हो तो हे रोग! तू मेरे पति की रक्षा के लिए गर्भस्थ बालक के प्रभाव से चला जा। यह कह कर रानी ने पानी छिडका। रानी के द्वारा पानी छिडकते ही प्रजा मे से रोग-महामारी चली गई।

महारानी ने जो पानी छिडका था, उसमे महामारी को भगाने की शक्ति नही थी। यह शक्ति रानी के शील में

थी । पानी कोई भी छिडक सकता है । पानी छिडकने मात्र से रोग नही चले जाते । पानी छिडकने के पीछे सदाचार की शक्ति चाहिये । सुना है कि महाराना प्रताप का भाला उदयपुर मे रखा है । दो आदमियो के उठाने से वह उठता है । वह भाला प्रताप का है । उसके उठाने के लिए प्रताप की सी शक्ति चाहिए । इसी प्रकार पानी के साथ भीतर के पानी की भी जरूरत है ।

पानी के छीटे डालकर महारानी चारो ओर महाशक्ति की तरह देखने लगी । चारो ओर देखती हुई वे उस तरह ध्यान मग्न हो गई जिस तरह राजा हुए थे । रानी इस प्रकार ध्यानमग्ना थी कि इतने मे लोगो ने महाराजा से आकर कहा कि महामारी के रोगी अच्छे हो गये हैं और अब प्रजा मे शाति वरत रही है । राजा विचार कर रहे थे कि रानी गभवती है अत भूखे रखने से गर्भ को न मालूम क्या होगा किन्तु यह समाचार सुनकर वे प्रसन्न हुए और गर्भस्थ आत्मा का ही यह चमत्कारिक प्रभाव है, ऐसा माना । रानी के गर्भ मे रहे हुए महापुरुष के प्रताप से ही प्रजा मे शाति छाई है । महाराजा ऐसा सोच रहे थे कि इतने मे दासी ने आकर कहा कि महारानी देवी या शक्ति की तरह महल के ऊपर खडी हैं । इस समय की उनकी मुद्रा के विषय मे कुछ कहा नही जा सकता । दासी से यह समाचार सुनकर महाराजा रानी के पास दौडे गये और कहने लगे कि हे देवि ! अब क्षमा करो । अब प्रजा मे शाति है । आपके प्रताप से सब रोग दूर हो गये हैं ।

बन्धुओ ! राजा रानी को इस प्रकार बढावा देते हैं, उनकी कद्र करते हैं । आप लोगो के घरो मे इसके विप-

रीत तो नही होना है न ? ज्ञातासूत्र मे मेघकुमार के अधिकार मे यह पाठ आया है कि "उरालेण तुझे देवी सुविणे दिट्ठे" आदि। मेघकुमार की माता स्वप्न देखकर जव पतिदेव को सुनाने गई थी, तव उनके द्वारा कहे हुये ये प्रशसा वचन हैं। स्त्री और पुरुष को परस्पर किस प्रकार ऊ ची सभ्यता से वर्ताव करना चाहिए, उसका यह नमूना है। शास्त्र मे पारस्परिक वर्ताव मे कैसी सभ्यता दिखानी चाहिए इसकी शिक्षा दी हुई है। यदि शास्त्र ठीक ढग से सुनाये और सुने जाय तो वहुत कुछ सुधार हो सकता है। मेघकुमार के पिता ने कहा कि हे रानी तुमने जो स्वप्न देखे है वे बहुत उदार, सुखकारी तथा मगलकारी हैं। इन स्वप्नों के प्रताप से तुम को राज्य और पुत्र का लाभ होगा। रानी को लाभ होने से राजा को लाभ है ही। फिर भी ऐसा न कहा कि मुझे लाभ होगा। किन्तु यह कहा कि रानी, तुझे लाभ होगा।

महाराजा विश्वसेन ने प्रजा में शाति होने का सारा यश रानी के हिस्से मे ही वताया और स्वय यश के भागी न बने। रानी चलो, अव भोजन करे। रानी ने कहा, महाराज इस प्रकार वडाई करके मुझ पर बोझा क्यो डाल रहे हैं ? मैं तो आपके पीछे हूँ। आपके कारण मैं रानी कहलाती हूँ। मेरे कारण आप राजा नही कहलाते। जो कुछ हुआ है वह सब आप के ही प्रताप से हुआ है। मुझ मे जो शील की शक्ति है वह आपकी प्रदान की हुई है। आप मुझ पर इस प्रकार वोझा न डालिये। इस प्रकार दोनों एक दूसरे को यश का भागी वनाने लगे। ऐसे घर मे ही महापुरुष जन्म धारण करते हैं।

पुन राजा कहने लगे, हे रानी यदि मेरे प्रताप से प्रजा मे शाति हुई होती तो जव मैं ध्यानमग्न होकर वैठा

था तव क्यो नही हुई ? अत जो कुछ हुआ है वह मेरे प्रताप से नही किन्तु तुम्हारे प्रताप से हुआ है । आप साक्षात् शक्ति है । आपके कारण ही यह सब आनन्द हुआ है । राजा की दलील के उत्तर मे रानी ने कहा कि शक्ति शिव की ही होती है । आप शिव हैं तभी मैं शक्ति वन सकी हूँ । अत कृपया मुझ पर यह बोझा न डालिये ।

राजा ने कहा-अच्छा, अव मेरी तुम्हारी दोनो की वात रहने दो । इस प्रकार इस वात का अन्त न आयेगा । एक दूसरे को यश प्रदान करने का यह गेन्द का सा खेल ऐसे समाप्त न होगा । जैसे गेन्द दूसरे को दी जाती है उसी प्रकार यह यश किसी तीसरी शक्ति को दे डालें । इस कीर्ति का भागी तुम-हम नही हैं किन्तु तुम्हारे उदर मे विराजमान महापुरुष है । उस महापुरुष के प्रताप से ही प्रजा मे शाति हुई है । यह सब यश हम हमारे पास न रखकर उस महा-पुरुष को समर्पण कर हल्के बन जाय ।

महाराजा और महारानी की तरह आप लोग भी सब यश कीर्ति परमात्मा को सौप दो । अपने लिए न रखो । यदि आप ऐसा कहे कि हे प्रभो ! जो कुछ है, वह सब आप ही का है तो कितना अच्छा रहे । विचार इस बात का करना चाहिये कि परमात्मा को अच्छे काम समर्पण करने या बुरे ? अच्छे कामो का परिणाम सुनकर मनुष्य को गर्व आ जाता है कि मैंने ऐसा किया है । अत अच्छे कामो का फल ईश्वर को समर्पण कर देना चाहिए । बुरे कामो की जिम्मेवारी खुद पर लेनी चाहिए ताकि भविष्य मे बुराई से बचें ।

महाराजा की बात सुनकर महारानी ने कहा कि अच्छी बात है जो कुछ शुभ हुआ है वह गभ के प्रताप से ही हुआ है। जिसका ऐसा प्रताप है उसका जन्म होने पर क्या नाम रखना चाहिये। राजा ने कहा, उस प्रभु के प्रताप से राज्य मे शान्ति हुई है अत 'शान्तिनाथ' नाम रखना बहुत उपयुक्त है। वैसे ससार मे जितने भी अच्छे-अच्छे नाम हैं वे सब परमात्मा के ही नाम हैं। आपने भगवान् शान्तिनाथ को पहचाना है या नही ? भगवान् शान्तिनाथ को मारवाड की इस कहावत के अनुसार तो नही जाना है कि "शान्तिनाथ सोलमा, लाडू देवे गोलमा, कृपा करे तो कसार का, दया करे तो दाल का, मीठा मोती चूर का, लेरे भूंडा लट, उतर जाय गट।" इस प्रकार सासारिक कामना के लिए भगवान् के नाम का प्रयोग करना ठीक नही है। खुद की और ससार की वास्तविक शाति के लिए भगवान् के नाम का प्रयोग करना चाहिये। अपनी की हुई सब अच्छाइया परमात्मा के समपण करनी चाहिये और सकल ससार की शाति की कामना करनी चाहिये। आप दूसरो के लिये शाति चाहेंगे तो आपको खुद को शान्ति जरूर मिलेगी। महाराज विश्वसेन ने प्रजा को शान्ति पहुचाने के लिए कष्ट सहन किये तो उनको खुद को भी शान्ति प्राप्त हुई। भक्त भगवान् से यही चाहता है—

> नत्वह कामये राज्य, न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
> कामये दुःखतप्तानां, प्राणिनामार्तिनाशनम् ॥

अर्थ — हे परमात्मन् ! मुझे राज्य नही चाहिये, न स्वर्ग और न अपुनर्भव। मैं तो दु ख से तपे हुए प्राणियो के दु ख

दूर करने की शक्ति चाहता हूँ ।

"अपने सब दु:खो को सह लू, पर दु:ख सहा न जाय" यह चाहता हूँ । परमात्मा की प्रार्थना करने का यही रहस्य है । उसके दरबार मे से यही भिक्षा मागनी चाहिए । भगवान् शांतिनाथ की प्रार्थना यही बात सिखाती है ।

राजकोट
५-७-३६ का
व्याख्यान

२ : सूत्रारम्भ में मंगल

"कुन्थु जिनराज तू ऐसो, नहीं कोई देव तो जैसो ।"

यह भगवान् कुन्थुनाथ की प्रार्थना की गई है। भगवान् की प्रार्थना हम हमारी बुद्धि के अनुसार करे चाहे पूर्व के महात्माओ द्वारा मागधी भाषा मे जिस प्रकार प्रार्थना की गई है तदनुसार करे, एक ही बात है। आज मैं उन्ही विचारो को सामने रख कर प्रार्थना करता हूँ जो पूर्व के महात्माओ ने प्राकृत भाषा मे कहे हैं। शास्त्रानुसार परमात्मा की प्रार्थना करना ही ठीक है। शास्त्र मे प्रत्येक स्थल पर परमात्मा की प्रार्थना ही है, ऐसा मैं मानता हूँ। मेरी इस मान्यता से किसी का मतभेद भी हो सकता है। लेकिन पूरी तरह से विचार करने पर कोई मतभेद नहीं रह सकता। अर्हन्तो के द्वारा कहे हुए द्वादशागी मे से जो ग्यारह अग इस समय मौजूद हैं, उन मे परमात्मा की प्रार्थना ही भरी हुई है। आत्मा से परमात्मा बनने के उपाय ही तो शास्त्रो मे वर्णित हैं। आत्म स्वरूप का वर्णन प्रार्थना रूप ही है। भगवान् महावीर ने जगत् कल्याण के लिए निर्वाण से पूर्व जो सब से अन्तिम वाणी कही है वह (उत्तराध्ययन) के नाम से प्रसिद्ध है। इस उत्तराध्ययन सूत्र को यदि समस्त जैन शास्त्रो का सार

कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी । इस मे छत्तीस अध्ययन हैं ।

सारे उत्तराध्ययन सूत्र को क्रमश आद्योपान्त पढने मे वहुत समय की आवश्यकता होती है । अकेले उत्तराध्ययन के लिए यह बात है तो समस्त द्वादशागी वाणी के लिए वहुत समय, शक्ति और ज्ञान की आवश्यकता है । भगवान् की समस्त वाणी को समझाना और समझना हमारी शक्ति के बाहर है । हमारी शक्ति गागर उठाने की है । सागर उठाने की हमारी शक्ति नही है । हमारा सद्भाग्य है कि पूर्वाचार्यों ने हम अल्प शक्ति वाले लोगो के लिए भगवान् की द्वादशागी वाणी रूपी सागर को इस उत्तराध्ययन रूपी गागर मे भर दिया है । इस गागर को हम उठा सकते है, समझ सकते हैं। पूर्व के उपकारी महात्माओ ने यह प्रयत्न किया है मगर शास्त्रो को समझने की असली कुजी हमारी आत्मा मे है । शास्त्र तो निमित्त कारण है। कागज और स्याही के लिखे होने से जड वस्तु है । शास्त्र समझने का वास्तविक कारण-उपादान कारण हमारी आत्मा है । उदाहरण के लिए, सब लोग पुस्तकें पढते हैं किन्तु जिनका हृदय विकसित हो, पूर्व-भव के निर्मल सस्कार हो, उन्ही की समझ मे पुस्तको मे रही हुई गूढ बातें आती हैं । हर एक को समझ नही पडती । इसी बात को ध्यान मे रख कर कक्षा-दर्जा के अनुसार पुस्तकें बनाई जाती हैं । सातवी कक्षा मे पढाई जाने वाली पुस्तक यदि पहले दर्जे वाले विद्यार्थी को पढाई जाय तो उसकी समझ मे कुछ न आयेगा । कारण कि प्रथम कक्षा के विद्यार्थी का दिमाग अभी उतना विकसित नही हुआ है । यही बात

शास्त्र के विषय मे भी है । जिसकी बुद्धि का जितना विकास हुवा होगा उतना ही उसे शास्त्र-ज्ञान हासिल हो सकता है। शास्त्र समझने का असली उपादन कारण आत्मा है और जिसका आत्मा जितना निर्मल, वासना-रहित होगा उतना ही वह समझ सकेगा हृदय मे धारण करके आचरण में भी उतार सकेगा ।

समस्त उत्तराध्ययन का वर्णन करना, उसमें रहे हुए गूढ विषयो का भावार्थ समझाना बहुत कठिन है । समय भी अधिक चाहिये सो नही है । अत उत्तराध्ययन के बीसवे अध्ययन का वर्णन किया जाता है ।

यह बीसवाँ अध्ययन इस जमाने के लोगो के लिए नौका समान है । मानव हृदय मे जितनी शकाए उठती हैं उन सब का समाधान इस अध्ययन मे है, ऐसी मेरी धारणा है । इस अध्ययन का वर्णन मैंने पहले बीकानेर मे किया था, अत अब पुन वर्णन करने की जरूरत नही है । किंतु मेरे सन्तो का आग्रह है कि उसी अध्ययन का यहाँ भी पुन विवेचन किया जाय । सन्तो के कहने से मैं इस पर व्याख्यान प्रारम्भ करता हूँ । इस अध्ययन को आधार बना कर मैं कुछ कहना चाहता हूँ ।

उन्नीसवें अध्ययन मे मृगापुत्र का वर्णन है । उस मे कहा गया है कि साधु महात्माओं को वैद्य डाक्टरो की शरण में न जाकर अपनी आत्मा का ही सुधार करना चाहिए । आत्मा का ही सुधार करना या जगाना इसका अर्थ यह नही है कि स्थविरकल्पी साधु वैद्य-डाक्टरों की सहायता न ले । स्थविरकल्पी साधु वैद्य ...

यता ले सकते हैं मगर यह अपवाद मार्ग है । शारीरिक बीमारी मिटाने के लिए दवा–दारु देना उत्सर्ग मार्ग नही है । उत्सर्ग मार्ग तो यही है कि सिवा भगवान् या अपनी आत्मा या अन्य किसी की सहायता न लेकर आत्म जाग्रति मे ही तल्लीन रहे । इस बीसवे अध्ययन मे इसी बात का वर्णन है कि साधु वैद्यो की शरण न ले । वैद्य या अन्य कुटुम्बी कोई भी इस आत्मा का त्राण करने मे समर्थ नही है । इस अध्ययन मे यह बताया गया है कि आत्मा मे बहुत शक्ति रही हुई है । भूतकाल मे आत्मा कैसी भी स्थिति मे रहा हो, वर्तमान मे कैसी भी स्थिति मे हो और भविष्य मे भी कैसी भी स्थिति मे रहे, इस बात की चिन्ता नही । किन्तु इस स्थिति का यदि त्याग कर दिया जाय तो आत्मा मे अनन्त शक्ति का विकास हो सकता है और वह सब कुछ करने मे समर्थ भी हो सकता है ।

इस बीसवें अध्ययन मे जो कुछ कहा हुआ है, उस सब का सार यह है कि खुद के डाक्टर खुद बनो । ऐसा करने से किसी का आसरा (शरण) लेने की आवश्यकता न रहेगी । आत्मा की शक्ति से आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनो प्रकार के ताप–कष्ट दूर हो सकते हैं । त्रयताप के विनाश हो जाने पर आत्मा मे किसी प्रकार का सन्ताप नही रहता । ससार का कोई भी प्राणी सन्ताप नही चाहता । कोई भी आत्मा अशान्ति नही चाहता । सब कोई शान्ति चाहते हैं । किन्तु शान्ति प्राप्त करने के लिए किस प्रकार के प्रयत्न अब तक किये हैं, यह शास्त्रीय दृष्टि से देखना चाहिए । हमारे प्रयत्नो मे क्या कमी है कि जिससे चाहने पर भी सुख शान्ति हम से

दूर भागती है।

इस बीसवें अध्ययन का वर्णन किस प्रकार किया गया है, यह बताते हुए मैं इसी अध्ययन की प्रथम गाथा द्वारा परमात्मा की प्रार्थना करता हूँ।

> सिद्धाण नमो किच्चा, सजयाण च भावओ ।
> अत्थ धम्म गइ तच्च, अणुसिट्ठि सुणेह मे ।

यह मूल सूत्र है।

गुरु शिष्य से कहते हैं कि मैं तुम्हे शिक्षा देता हूँ, तुम्हे मुक्ति का मार्ग बताता हूँ। किन्तु यह कार्य मैं अपनी शक्ति पर ही भरोसा रख कर नही करता। सिद्ध और सयतियो को नमस्कार करके, उनकी शरण लेकर, उनके आधार पर यह काम करता हूँ।

वैसे तो जहाँ का मार्ग पूछा जाता है, वही का मार्ग बताया जाता है किन्तु यहा मुक्ति का मार्ग बताया जाता है। गुरु कहते हैं कि मैं अर्थ धर्म का मार्ग बताता हूँ। पहले अर्थ का—अर्थ समझ लेना चाहिए।

> अर्थ्यते प्राप्यते धर्मात्मभिरिति अर्थ । स च प्रकृते मोक्ष, सयमादिर्वा । स एव धर्म । तस्य गति ज्ञान्
> यस्या तां अनुशिष्टि मे शृणुत इत्यर्थ ॥

अर्थ—धर्मात्मा लोगो के द्वारा जिसकी चाहना की जाय, वह अर्थ है। यहा अर्थ से मतलब मोक्ष या सयम से है। मोक्ष या सयम ही धर्म है। उसकी गति या मार्ग

ज्ञान है । उस ज्ञान का वर्णन मुझ से सुनो ।

जिसकी इच्छा की जाय, उसे अर्थ कहते हैं । सामान्य-मोटी बुद्धि वाले लोग अर्थ का मतलब धन करते हैं । और धन के लिए ही रात दिन दौडधूप किया करते हैं । किन्तु यहा अर्थ का मतलब धन नही है । आप लोग मेरे पास धन लेने नही आये हैं । धन का मैं कतई त्याग कर चुका हूं । धन के अतिरिक्त कोई अन्य वस्तु आप चाहते हैं और वही ग्रहण करने के लिए यहा आये हो । कदाचित् किसी गृहस्थ की यह मशा हो सकती है कि महाराज के व्याख्यान श्रवण करने से या किसी अन्य बहाने से धन मिल सकता है किन्तु ये सन्त और सतिया जो यहाँ आये हुए हैं किसी भौतिक पौदगलिक चाहना से नही आये हैं किन्तु परमार्थ की भावना से आये हैं । सन्त और सतिना आई हैं इसी से मालूम हो जाता है कि अर्थ का अर्थ धन नही किन्तु कोई अन्य वस्तु है । वह अन्य वस्तु मुक्ति से जुदा नही हो सकती । मुक्ति ससार के बधनो से छुटकारा पाने की इच्छा ही वास्तविक अर्थ है ।

जिसकी इच्छा की जाय, वह अर्थ है । किन्तु इस में इतना और बढा देना चाहिए कि धर्मात्मा लोग जिसकी इच्छा करे, वह अर्थ है । धर्मात्मा लोग धर्म की ही इच्छा करते हैं । अत सिद्ध हुआ कि यहा अर्थ का मतलब धर्म है । आगे और स्पष्ट कहा है कि धर्म रूपी अर्थ मे जिससे गति होती है, वह शिक्षा देता हूं । धर्म रूपी अर्थ मे ज्ञान से गति होती है । ज्ञान द्वारा ही धर्म रूपी अर्थ प्राप्त किया जा सकता है । अत सारे कथन का यह भावार्थ निकलता

यानी शुक्लध्यान रूपी जाज्वल्यमान अग्नि से जला दिया है, वह सिद्ध है । अथवा 'पिधुगतौ' से भी सिद्ध बन सकता है । जिस स्थान पर पहुच कर फिर वहा से नही लौटना पडता, उस स्थान पर जो पहुच गये है, उन्हे भी सिद्ध कहते हैं ।

कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि सिद्ध होकर भी पुन ससार मे लौट आते हैं । जैसे कहा है —

> ज्ञानिनो धर्म तीर्थस्य, कर्त्तार परम पदम् ।
> गत्वाऽऽगच्छन्ति भूयोऽपि भव तीर्थ-निकारत ॥

अर्थात्—धर्म रूपी तीर्थ के कर्त्ता ज्ञानी लोग अपने तीर्थ का पराभव देख कर परम पद को पहुच कर भी पुन ससार मे लौट आते हैं ।

यदि सिद्धि स्थल मे पहुच कर भी वापस ससार मे आ जाते हो तो वह सिद्धि स्थल ही न कहा जायगा । सिद्धि-मुक्ति तो उसे ही कहते हैं कि जहाँ पहुच कर वापस नही लौटना पडता । कहा है—

> यत्र गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परम मम ।

अर्थात्—जहा जाकर वापस न आना पडे वह परम धाम है और वही सिद्धो का स्थान है । उसे ही सिद्धि कहते हैं । जहा जाकर वापस आना पडे, वह तो ससार ही है ।

व्युत्पत्ति के अनुसार सिद्ध शब्द का तीसरा अर्थ भी होता है । 'षिधु सराद्धौ' जो कृतकृत्य हो चुके हैं, जिनको

अब कोई काम करना बाकी न रहा है, वे भी सिद्ध कहे जाते हैं ।

जैसे पकी हुई खिचडी को पुन कोई नही पकाता । यदि कोई पकी हुई खिचडी को पकाता है तो उसका यह काम व्यर्थ समझा जाता है । इसी प्रकार जिसने सब काम कर लिए हैं और करने के लिए शेष कुछ नही रहा है, वह सिद्ध है । इस प्रकार सिद्ध शब्द के ये तीन अर्थ हैं । शब्द एक ही है किन्तु जैसे एक शब्द मे नाना घोष होते हैं उसी प्रकार एक शब्द के अनेक अर्थ भी हो सकते हैं ।

सिद्ध शब्द का एक चौथा अर्थ भी किया जाता है। 'षिधून शास्त्रे मागल्ये वा' । इसका अर्थ है जो दूसरो को कल्याण मार्ग का उपदेश देता है और उपदेश देकर मोक्ष को पहुचा है, वह साक्षात् सिद्ध है । शास्ता अर्थात् दूसरो को उपदेश देने वाला ।

यदि दूसरे को उपदेश कर मुक्ति जाने वाले को सिद्ध कहा जायगा तो अरिहन्त होकर जिन्होने मुक्ति पाई है, वे ही सिद्ध कहे जायेंगे अन्य नही । किन्तु सिद्ध तो पन्द्रह प्रकार के कहे गये हैं । इसके उपरान्त मूक केवली जो कि किसी को उपदेश नही देते तथा अन्तकृत् केवली जो कि अन्तिम समय मे केवल ज्ञान प्राप्त कर मुक्ति पहुच जाते हैं, जिनके लिए दूसरो को उपदेश देने का अवसर ही नही रहता, क्या वे सिद्ध नही कहे जायेंगे ? क्या ध्यान मौन द्वारा आत्म कल्याण करने वाले महात्मा के लिए (सिद्ध शब्द के लिए) प्रयुक्त यह शास्ता शब्द लागू नही होगा ?

इस का उत्तर यह है कि जो महात्मा मौन रहकर जीवन व्यतीत करते हैं तथा जिन्हे उपदेश देने का अवसर ही न मिला हो, वे भी जगत् का कल्याण करते ही हैं। उनके लिए भी यह शास्ता शब्द लागू होता है। ध्यान मौन द्वारा मोक्ष प्राप्त करने वाले महात्मा भी ससार को शिक्षा देते हैं और वह शिक्षा भी महान् है। ससार को मौन-शिक्षा की भी बहुत आवश्यकता है। हिमालय की गुफा मे बैठ कर या किसी एकान्त शान्त स्थान पर मे ध्यानस्थ होकर एक योगी ससार को जो सहायता पहुंचाता है और उसके द्वारा जगत् का जो कल्याण साधता है, उसकी बराबरी बहुत उपदेश झाडने वाले किन्तु आचरण-शून्य व्यक्ति कभी नही कर सकते। यह ससार अधिकतर न बोलने वालों की सहायता से ही चलता है। मूक सृष्टि के आधार पर ही यह बोलने वाली सृष्टि निर्भर रही है। पृथ्वी पानी आदि के जीव मूक ही हैं। ये मूक जीव ही इस बोलती हुई सृष्टि का पालन करते हैं। इस से यह बात समझ में आ जायगी कि उपदेश न देने वाले महात्मा भी जगत् का कल्याण करते ही हैं। वासनाओं से रहित उनकी शात दात और सयत आत्मा से वह प्रकाश-आध्यात्मिक तेज निकला है कि जिससे आधि-व्याधि और उपाधि से संतप्त आत्माओं को अपूर्व शाति मिल सकती है।

गुरोस्तु मौनं शिष्यास्तु छिन्न-सशया

अर्थात्—गुरु के मौन होने पर भी उनकी आकृति आदि के दर्शन मात्र से सशय छिन्न भिन्न हो जाते हैं। नास्तिक से नास्तिक शिष्य भी गुरु की ध्यानावस्थित

आकृति से आस्तिक बनने के दृष्टान्त मौजूद हैं । अत यह बात सिद्ध हो जाती है कि मौखिक उपदेश न देने वाले महात्मा भी जगत् का कल्याण करते ही हैं । उनके आचरण से जगत् बहुत शिक्षा ग्रहण करता है ।

दूसरी बात सिद्ध भगवान मोक्ष गये है, इसी से लोग मोक्ष की इच्छा करते हैं । यदि वे मोक्ष न पहुचते तो कोई मोक्ष की इच्छा नही करता । वे महात्मा मन, वचन और काया को साध कर मोक्ष गये और इस तरह ससार के लोगो को अपना आदर्श रख कर मोक्ष का मार्ग बताया । ससार के प्राणियो मे मुक्ति की ख्वाहिश पैदा की । अत उनको शास्ता कहा जा सकता है ।

'पिधून् शास्त्रे मागल्ये वा' मे शास्ता के साथ ही साथ जो मागलिक हैं वे भी सिद्ध कहे गये हैं । मागलिक का अर्थ पाप नाश करने वाला होता है । 'मा अर्थात् पाप गालयतीति मागलिक'। जो पाप का नाश करने वाले है वे सिद्ध है ।

यहा यह शका होती है कि जो पाप का नाश करने वाला है, वह सिद्ध है तो बडे बडे महात्मा, जो कि पाप के नाश करने वाले थे, उनको पाप का उदय कैसे हुवा ? उन महात्माओ को रोग तथा दु ख कैसे हुए ? गजसुकुमार मुनि के सिर पर अगारे रखे गये और भगवान् महावीर को लोहीठाण की बीमारी हुई । क्या उनमे सिद्धो की मागलिकता न थी ?

बात यह है कि कष्ट पाने वाला व्यक्ति कष्ट देने

वाले व्यक्ति के प्रति राग-द्वेप-पूर्ण भावना लाता है, तब तो उसकी मागलिकता नष्ट होती है । राग द्वेप करने के कारण वह मगल रूप न रह कर अमलरुप बन जाता है। किन्तु जो महापुरुष कष्ट देने वाले के प्रति प्रेम की वर्षा करते हैं, उसके लिए सद्भाव रखते हैं, उसके सुधार की कामना करते हैं, वे सदा मागलिक ही हैं । गजसुकुमार मुनि ने सिर पर अग्नि के अगारे रखने वाले का मन में बडा उपकार माना कि इस सोमिल ब्राह्मण ने मेरी शीघ्र मुक्ति मे बडी सहायता की है । तथा भगवान् महावीर ने अपने पर तेजोलेश्या फेंकने वाले गोशालक पर क्रोध नहीं किया था । वे मगलरुप ही बने रहे । इस प्रकार उन में मागल्किता घटित होती है । पूर्वजन्म के वैर बदले के कारण वेदना या दुख आदि हो सकते हैं मगर उन वेदनाओ और दुखो मे जो अविचल रहता है, वह सदा मांगलिक है ।

सिद्ध भगवान् मे भाव मागलिकता है, द्रव्य मागलिकता नही है । आप लोग द्रव्य मगल देखते हैं । जिसमे भाव मगल हो वह द्रव्य मगलजन्य चमत्कार दिखा सकता है किन्तु सिद्धि पद को पाने वाले महात्मा ऐसा नहीं करते। न ऊचे पहुचे हुए महात्मा ही चमत्कार दिखाने के झझट मे पडते हैं । वे अपनी आत्मशाति मे मशगूल रहते हैं। यदि उन्हें चमत्कार दिखाने की इच्छा होती तो वे चक्रवर्ती का राज्य और सोलह २ हजार देवो की सेवा का त्याग क्यो करते और सयम क्यो लेते ? चमत्कार करने वाले देव ही स्वय सेवक हों तब क्या कमी रह जाती है ।

जिस प्रकार सूर्य की कोई पूजा करता है और कोई

उसे गाली देता है। किन्तु सूर्यपूजा करने वाले और गाली देने वाले को समान रूप से प्रकाश प्रदान करता है। वह पूजा करने वाले पर प्रसन्न नही होता और गाली देने वाले पर अप्रसन्न भी नही होता। दोनो पर समभाव रखता हुआ अपना प्रकाश-प्रदान रूप कर्त्तव्य करता रहता है। इसी प्रकार सिद्ध भगवान् भी किसी की बुराई पर ध्यान न देते हुए सब का कल्याण रूप मगल करते हैं।

सिद्ध शब्द का पाँचवा अर्थ यह भी होता है कि जिनकी आदि तो है लेकिन अन्त नही है।

गुरु महाराज शिष्य से कहते हैं कि मैं ऐसे सिद्ध भगवान् को नमस्कार करके धर्मरूपी अर्थ का सच्चा मार्ग बताता हूँ।

सिद्ध को नमस्कार करके सूत्रकार भाव से सयति को नमस्कार करते हैं। सयति शब्द का अर्थ साधु होता है। साधु दो प्रकार के हो सकते हैं। द्रव्य-साधु और भाव-साधु। यहाँ शास्त्रकार द्रव्य-साधु को नमस्कार नही करते मगर जो भाव-साधु हैं, उन्हे नमस्कार करते हैं। शास्त्र के रचने वाले गणधर चार ज्ञान के स्वामी थे फिर भी वे उनको नमस्कार करते हैं जो भाव से सयति हो। आज कल के साधुओ को ख्याल करना चाहिए कि यदि उनमे भावसाधुता है तो गणधर भी उनको नमन करते हैं। भाव साधुता से ही द्रव्य साधुता शोभती है। कोरा वेष शोभा नही देता। गुणो के साथ वेष देदीप्यमान होता है। भाव साधुता न हो तो कुछ भी नही है।

इस बीसवें अध्ययन मे जो कुछ कहा गया है वह सब शास्त्रकार ने सक्षेप मे इस पहली गाथा मे ही कह डाला है । पहली गाथा मे सारे अध्ययन का सार किस प्रकार दिया गया है यह बात कोई विशेषज्ञ ही समझ सकता है । केवल जैन सूत्रो के विषय मे ही यह बात नहीं है किन्तु जैनेतर ग्रन्थो में भी यह परिपाटी देखी जाती है कि सूत्र के आदि मे ही सारे ग्रथ का सार कह दिया जाता है ।

मैंने कुरानशरीफ का अनुवाद देखा है । उसमे बताया गया है कि १२४ इलाही पुस्तको का सार तोरत, एंजिल, जबूर और कुरान इन पुस्तको मे लाया गया और इन चारो का सार कुरान मे लाया गया है । सारे कुरान का सार उसकी पहली आयत मे हैं —

बिस्मिल्लाह रहिमाने रहीम

सारे कुरान का सार एक ही आयत मे कैसे समाया हुआ है । यह बात समझने लायक है, जब कि इस आयत में रहमान और रहीम दोनो आ गये तब कुरान मे और क्या रह जाता है ? हिन्दू धर्म ग्रन्थो मे भी कहा गया है कि 'दया धर्म का मूल है' । यद्यपि इस शब्द मे केवल दो ही अक्षर हैं किन्तु इसमे धर्म का सपूर्ण सार आ गया है। दया मे सपूर्ण धम का सार आ गया है, यह बात कुरान, पुरान, वेद या आगम से तो सिद्ध होती ही है मगर हमारी आत्मा इसका सब से बडा प्रमाण है ।

मान लीजिये कि आप एक निर्जन जगल में जा रहे

हैं । वहा कोई व्यक्ति नगी तलवार लेकर आपके सामने उपस्थित होता है और आपकी जान लेना चाहता है । उस समय आप उस व्यक्ति मे किस बात की खामी अनुभव करेंगे ? यही कि उस व्यक्ति मे दया नही हैं । ठीक उसी वक्त एक दूसरा व्यक्ति उपस्थित होता है और आप दोनो के बीच मे होकर उस आततायी-हत्यारे से कहता है कि ऐ पापी ! इस व्यक्ति को मत मार । यदि तू खून का ही प्यासा है तो मुझे मार कर अपनी प्यास बुझाले मगर इस व्यक्ति को मत मार । कहिये, यह दूसरा व्यक्ति आपको कैसा मालूम देगा ? इसमे आपको क्या विशेषता नजर आयगी ? आप कहेंगे यह दूसरा व्यक्ति बडा दयालु है । इस मे दया बसी है । इस व्यक्ति मे दया है और उस व्यक्ति मे हिंसा है । यह बात आपने कैसे जानी ? किस प्रमाण से जानी । मानना होगा कि इसमे हमारी आत्मा ही प्रमाण है ? आत्मा अपनी रक्षा चाहता है अत रक्षण और भक्षण करने वाले को वह तुरन्त पहचान जाती है । दया-अहिंसा आत्मा का धर्म है । यदि आपको धर्मात्मा बनना हो तो दया को अपनाइये । शास्त्र मे कहा है —

एव खु नाणिणो सार, ज न हिसइ किंचणन् ।

यदि तू अधिक न जाने तो इतना तो अवश्य जान कि जैसा तेरा आत्मा है वैसा ही दूसरे का भी है । जो बात तुझे बुरी लगती है वह दूसरे को भी वैसी ही लगती है । एक फारसी कवि ने कहा है कि—

ख्वाहि कि तुरा हेच बदी न आयद पेश ।
तात्वानी बदी मकुन मज बमोवेश ॥

यदि तू चाहता है कि मुझ पर कोई जुल्म न करे तो जिन्हे तू जुल्म मानता है, वे जुल्म तू स्वय दूसरो पर मत कर।

यदि कोई आपको मार पीटकर आपके पास की वस्तु छीनना चाहे या झूठ बोल कर आपको ठगना चाहे अथवा आपकी बहू बेटी पर बुरी नजर करे तो आप उसे जुल्मी मानोगे न ? ऐसी बातें समझाने के लिए किसी पुस्तक या गुरु की जरूरत नही होती। आत्मा स्वय गवाही दे देता है कि अमुक बात भली है या बुरी। ज्ञानी कहते हैं कि जिन कामो को तू जुल्म मानता है वे दूसरो के लिए मत कर। किसी का दिल न दुखाना, झूठ न बोलना, चोरी न करना, पराई स्त्री पर बुरी निगाह न करना और आवश्यकता से अधिक भोगोपभोग वस्तुए सग्रह करके न रखना ये पाच महानियम हैं जिनके पालन करने से कोई जुल्मी नही बनता। जो बात हमे अच्छी लगती है वही दूसरे के लिए करनी चाहिये। यदि आप जुल्मी न बनोगे तो दूसरा भी जुल्म करना छोड देगा। इस बात को जरा गहराई से सोचिये। केवल दूसरे के जुल्मो की तरफ ही ख्याल न करो, अपने आपको भी देखो। करीमा मे कहा है-

पहल साल उम्रे अजीजो गुजश्त ।
मिजाजे तो अज हाल तिफ्ली न गश्त ॥

यानी तेरी उम्र के चालीस साल बीत गये तब भी तेरा बचपन नही गया। अब तो बचपन छोड कर काम समझो। जिनको तुम जुल्म या अत्याचार मानते हो, वे कार्य यदि दूसरे त्यागें या न त्यागें किन्तु यदि तुम्हे धर्मी बनना है तो तुम स्वय ऐसे काम छोड दो।

कोई राजा यह कभी नही सोचता कि मैं अकेला ही राजा क्यो हूँ, सब लोग राजा क्यो नही हैं? दूसरे ने जुल्म त्यागे है या नही, इसका विचार न करके जो बात बुरी है, उसे हमे त्याग देना चाहिए।

सिद्ध या विस्मिल्लाह कह कर किसी बात के शुरु करने का क्या अर्थ है? क्या सिद्ध से कोई बात छिपी हुई रह सकती है? सिद्ध का नाम लेकर कोई कार्य शुरु किया जाय, किन्तु हृदय मे पाप रखा जाय, कपटपूर्वक काय किया जाय तो क्या सिद्ध का नाम लेना साथक है? कभी भी नही। रहम और रहमान को जान लेने पर कुछ भी जानना बाकी नहीं रहता।

विद्वान् लोग कहते हैं कि—क्यामत के वक्त या और किसी वक्त जो मोमिन और काफिर पर रहम करता है, वह रहमान है। वह रहमान इसीलिए विना भेद भाव के सब पर दया करता है। कोई कह सकता है कि रहमान मोमिनो पर दया करे यह तो ठीक है मगर काफिरो पर दया कैसी? काफिरो पर क्यो दया की जाय? इसका उत्तर यह है कि मोमिन और काफिर अपने अपने कामो से होते। कोई हिन्दू है अत काफिर है और कोई मुसलमान है अत मोमिन है, यह बात नहीं है। यदि दो मुसलमान आपस मे लड रहे हो और कोई तीसरा हिन्दू आकर उनकी लडाई मिटादे तो उस हिन्दू को काफिर कहा जायगा? कदापि नही। और क्या लडने वाले उन दोनो मुसलमानो को मोमिन कहा जायगा? नही। काफिर और मोमिन किसी जाति विशेष मे जन्म लेने से नही होता

किन्तु जिसमे रहम-दया हो, शैतानियत का अभाव हो, वह मोमिन है और जिसने रहम-दया न हो, शैतानियत हो वह काफिर है ।

शास्त्र मे यह कहा गया है कि—मैं कल्याण की शिक्षा देता हूँ । क्या यह शिक्षा केवल साधुओ के लिए ही है अथवा केवल श्रावको के लिए ही, या सब के लिए है ? जब सूर्य बिना भेद भाव के सब के लिए प्रकाश प्रदान करता है तब जिन भगवान् के लिए—

सूर्यातिशायि महिमासि जिनेन्द्र लोके

हे जिनेन्द्र ! जगत् मे आपकी महिमा सूर्य से भी बढ़कर है इत्यादि कहा गया हो, वे भगवान् जगत् मे शिक्षा देने मे क्या भेद भाव कर सकते हैं ? अनन्त महिमा वाले भगवान् की वाणी किसी व्यक्ति विशेष के लिए न होगी । सब के लिए होगी ।

सूर्य सब के लिए प्रकाश करता है, फिर भी यदि कोई यह कहे कि हमे सूर्य प्रकाश नहीं देता, अन्धेरा देता है, तो क्या यह कथन ठीक हो सकता है ? कदापि नहीं । चिमगादड़ और उल्लू यह कहें कि हमारे लिए सूर्य किस काम का ? सूर्य के उदय होने पर हमारे लिए अधिक अंधेरा छा जाता है । इसके लिए कहना होगा कि इस में सूर्य का कोई दोष नहीं है, वह तो सब के लिए समान रूप से प्रकाश प्रदान करता है । किन्तु यह उनकी प्रकृति का दोष है कि जिससे प्रकाश देने वाली किरणें भी उनके लिए अन्धकार का काम देती है ।

सूर्य के समान ही भगवान् की वाणी सब के लाभ के लिए है। किसी की प्रकृति ही उल्टी हो और वह लाभ न ले सके तो दूसरी बात है। जिनके हृदय मे अभिमान भरा हो वे लोग भगवान् की वाणी से लाभ नही उठा सकते। भगवान् की वाणी रूपी किरणे ऐसे लोगो के हृदय-प्रदेश मे प्रकाश नही पहुचा सकती।

भगवान् की वाणी का सहारा और लाभ किस प्रकार लिया जा सकता है, यह बात चरित्र कथन के द्वारा समझाता हूँ, जिससे कि सब की समझ मे आ जाय। चरित्र के जरिये प्रत्येक बात की समझ बहुत जल्दी पडती है। जो लोग तत्वज्ञान की बातें इस तरह नही समझ सकते, उनके लिए चरितानुवाद बहुत सहायक है। यदि कोई मनुष्य अपने हाथ मे रग लेकर कहे कि मेरे हाथ मे हाथी है या घोडा, तो सामान्य मनुष्य को इसमे गतागम न पडेगी। किन्तु यदि वही मनुष्य रग मे पानी डाल कर उससे हाथी या घोडे का चित्र बना कर पूछे कि यह क्या है तो बडी सरलता से कोई भी बता सकता है कि क्या है। जो चित्र बनाया गया है वह रग का ही है। किन्तु साधारण बुद्धि वाला व्यक्ति उस रग के पीछे रही हुई कर्त्ता की शक्ति विशेष को नही पहचान सकता। उसे रग मे हाथी घोडा नही दिखाई दे सकता। इसी प्रकार भगवान् की वाणी जब सीधी तरह समझ मे नही आती तब उसे समझाने के लिए चरितानुवाद का सहारा लेना पडता है। चरित्र प्रथमानुयोग कहा जाता है अर्थात् प्रथम सीढी वालो के लिए यह बहुत लाभप्रद है। मैं चरितानुयोग का कथन बहुत कठिन मानता हूँ, चरित्र के द्वारा सुधार भी किया

जा सकता है और बिगाड़ भी। अतः चरित्र-वर्णन में बहुत सावधानी रखने की आवश्यकता है।

धर्म की गूढ़ बातें समझाने के लिए चरित्र-वर्णन करता हूँ। इस चरित्र के नायक साधु नहीं किन्तु एक गृहस्थ हैं, जो अपनी पिछली अवस्था में साधु बने हैं। गृहस्थ के चरित्र का वर्णन करके महापुरुषों ने यह बता दिया है कि गृहस्थ भी कितने ऊंचे दर्जे तक धर्म का पालन करते हैं। साधुओं को, ग्रहण किये हुए पंच महाव्रत किस प्रकार पालन करने चाहिए यह इस से शिक्षा लेनी होगी। चरित्र नायक का नाम सेठ सुदर्शन है। मेरी इच्छा इन्हीं के गुणानुवाद करने की है अतः आज से प्रारंभ करता हूँ।

सिद्ध साधु को शीश नमा के एक करूं अरदास।
गुणगन की कथा कहूं मैं, पूरो हमारी आस ॥
था सेठ सुदर्शन, शीयल शुद्ध पाली, तारी आतमा ॥

धर्म के चार अंग हैं-दान, शील, तप और भावना। चारों का वर्णन एक साथ नहीं किया जा सकता। अतः कथा द्वारा शील का कथन किया जाता है। शील के साथ २ गौण रूप से दान, तप और भाव का भी कथन रहेगा। किन्तु मुख्य कथा शील की है। जैसे नाटक दिखाने वाले यह कहते हैं कि आज राम का राज्याभिषेक दिखाया जायगा। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं होता कि राज्याभिषेक के सिवाय अन्य दृश्य न दिखाये जायेंगे। राज्याभिषेक मुख्य रूप से बताया जाता है किन्तु गौण रूप से अन्य दृश्य भी दिखाये जाते हैं। इस कथा के नायक ने मुख्यतः शील का पालन किया है अतः इसीके गाने में इसे

धन्यवाद दिया गया है। कितनी कठिनाई के समय भी चरितनायक शील-धर्म से विचलित न हुए और अपना यह आदर्श चरित्र पीछे वालो के लिए छोड गये है।

शील का पालन करके अनन्त जीव अपना कल्याण साध चुके है। उन सबके चरित्र का वर्णन शक्य नही है। किसी एक के चरित्र का ही वर्णन किया जा सकता है। रग से अनेक हाथी घोडे चित्रित किये जा सकते हैं मगर जिस समय जितने की आवश्यकता होती है, उतने ही चित्रित किये जाते है। एक समय मे एक का ही चरित्र कहा जा सकता है। अत सुदर्शन का चरित्र कहा जाता है।

साधारणतया शील का अर्थ स्त्री—प्रसग या अन्य तरीको से वीर्यनाश न करना लिया जाता है। किन्तु यह अर्थ एकागी है, शील का पूर्ण अर्थ नही है। शील की व्याख्या बहुत विस्तृत है। बुरे काम से निवृत्त होकर अच्छे काम मे प्रवृत्त होने को शील कहते हैं। कार्य के प्रवृत्ति और निवृत्ति रूप दो अग हैं। बिना प्रवृत्ति के निवृत्ति नही हो सकती और बिना निवृत्ति के प्रवृत्ति भी शक्य नही है। साधु के लिए समिति हो और गुप्ति न हो अथवा गुप्ति हो और समिति न हो तो काम नही चल सकता। समिति और गुप्ति दोनो की आवश्यकता है। समिति प्रवृत्ति है और गुप्ति निवृत्ति।

यदि सूर्य आपको प्रकाश न दे, पानी प्यास न बुझाये और आग भोजन न पकाये तो आप इनकी प्रशसा न करेंगे। इसी प्रकार यदि महापुरुष अपना ही कल्याण साध ले

किन्तु लोककल्याण के लिए प्रवृत्त न हो तो आप उनको वदना क्यो करने लगेंगे ? महापुरुष यदि जगत् कल्याण के कार्यों मे भाग न ले तो बडा गजब हो जाय । तब ससार न मालूम किस रसातल तक पहुच जाय ?

शील का अर्थ बुरे काम छोड कर अच्छे काम करना है । पहले यह देखें कि बुरे काम क्या हैं ? हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार, आवश्यकता से अधिक भोगोपभोग, शराब आदि का नशा तथा अन्य दुर्व्यसन ये बुरे काम हैं । बीडी, तम्बाखू, भग आदि नशीली वस्तुओ का सेवन भी बुरे काम मे गिना जाता है । इन सब कामो का त्याग करना सक्षेप मे बुराई से निवृत्त होना कहा जाता है ।

दूसरे के साथ बुरा काम करना, अपनी आत्मा के साथ बुराई करना है । दूसरे को ठगना अपनी आत्मा को ठगना है । अत किसी की हिंसा न करना, किसी से झूठ बात न कहना, किसी की बहन-बेटी पर बुरी निगाह न करना किन्तु मा-बहिन समान समझना, नशे से तथा जुआ आदि व्यसनों से बचना, बुरे कामों से बचना है । इन बुरे कामों से बचकर दया, सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि गुण धारण करना तथा दान पान में वृद्धि न रहना अच्छे कामो मे प्रवृत्त होना है । परस्त्री-त्यागी भी यदि स्वस्त्री से ब्रह्मचर्य का खण्डन करता है तो वह अपूर्णशील है । जो स्व-पर दोनों का त्याग करता है, वह पूर्ण शील पालने वाला है । शील की यह व्याख्या भी अपूर्ण है । शील की व्याख्या मे पांचों महाव्रत भी आ जाते हैं ।

सुदर्शन सेठ करोडो की सम्पत्ति वाला था । फिर भी वह किस प्रकार अपने शील व्रत पर दृढ रहा, यह यथा शक्ति और यथावसर बताने का प्रयत्न किया जायगा। इस कथा को सुनकर जो अशुभ से निवृत्त होंगे, और शुभ मे प्रवृत्त होंगे वे अपनी आत्मा का कल्याण करेंगे तथा सब सुख उनके दास बन कर उपस्थित रहेंगे ।

राजकोट
६—७—३६ का
व्याख्यान

भेद से तीन प्रकार का है। द्विपद मे तीर्थंकर महान् हैं। चतुष्पद मे सरभ अर्थात् अष्टापद पक्षी महान् है। अपद में पुण्डरीक–कमल महान् है। वृक्षादि अपद जीवो मे कमल महान् है। अचित्त महान् मे चिन्तामणि रत्न महान् है। मिश्र महान् मे राज्य सम्पदा युक्त तीर्थंकर का शरीर महान् है। तीर्थंकर का शरीर तो दिव्य होता ही है किन्तु वे जो वस्त्र भूषणादि धारण करते हैं वे भी महान् हैं। स्थापना के कारण वस्तु का महत्व बढ जाता है। अत मिश्र महान् मे वस्त्राभूषण-युक्त तीर्थंकर शरीर है।

७ पडुच्च अपेक्षा महान्– सरसो की अपेक्षा चना महान् है और चने की अपेक्षा बेर महान् है।

८ भाव महान्– टीकाकार कहते हैं कि प्रधानता से क्षायिकभाव महान् है और आश्रय की अपेक्षा पारिणामिक भाव महान् है। पारिणामिक भाव के आश्रित जीव और अजीव दोनो हैं। किसी आचार्य का यह भी मत है कि आश्रय की दृष्टि से उदय भाव महान् है क्योंकि ससार के अनन्त जीव उदय भाव के ही आश्रित हैं। इस प्रकार जुदा जुदा मत हैं। किन्तु विचार करने से मालूम होता है कि आश्रय की अपेक्षा पारिणामिक भाव महान् है। इस मे सिद्ध और ससारी दोनों प्रकार के जीव आ जाते हैं। अत प्रधानता से क्षायिक भाव और आश्रय से पारिणामिक भाव महान् हैं।

यहाँ महा निर्ग्रन्थ कहा गया है सो द्रव्य क्षेत्र आदि की दृष्टि से नहीं किन्तु भाव की दृष्टि से कहा गया है। जो महापुरुष पारिणामिक भाव से क्षायिक मे बरतते हैं

उनको महान् कहा है ।

अब निर्ग्रन्थ शब्द का अर्थ समझ लेना चाहिये । ग्रन्थ शब्द का अर्थ होता है– गाठ । गाठें दो प्रकार की होती हैं । द्रव्य गाठ और भाव गाठ । जो द्रव्यओ र भाव दोनो प्रकार के बन्धनो से रहित होता है उसे निर्ग्रन्थ कहते हैं । द्रव्य ग्रन्थी नौ प्रकार की हैं और भाव ग्रन्थी १४ (चौदह) प्रकार की हैं ।

कोई व्यक्ति द्रव्य ग्रन्थी अर्थात् धन दौलत स्त्री पुत्र मकानादि छोड दे किन्तु भाव ग्रन्थी अर्थात् क्रोधमानादि विकार न छोडे तो वह निर्ग्रन्थ न कहा जायगा । निर्ग्रन्थ होने के लिये निश्चय और व्यवहार दोनो प्रकार की ग्रन्थी छोडना आवश्यक है । यह बात ठीक है कि सिद्ध पन्द्रह प्रकार के होते हैं और उनमे गृहलिङ्ग सिद्ध भी होते हैं जो द्रव्य परिग्रह नही छोडते किन्तु वे भाव की अपेक्षा से सिद्ध होते हैं । द्रव्य से तो स्वलिङ्गी ही सिद्ध होते है । जिन्होने द्रव्य और भाव दोनो प्रकार के बन्धन या ग्रन्थी छोड दी है वे निर्ग्रन्थ हैं और जिन्होने सर्वथा प्रकार से ग्रन्थी परिग्रह का त्याग कर दिया है वे महा निर्ग्रन्थ हैं । कोई द्रव्य ग्रन्थी को छोडता है तो कोई भाव ग्रन्थी को । अत यहा यह समझ लेना चाहिये कि जिन्होने दोनो प्रकार की ग्रन्थिया छोड दी हैं वे महानिर्ग्रन्थ हैं ।

ऐसे महान् निर्ग्रन्थ के चरित्र का आश्रय लेकर गुरु शिष्य को उपदेश देते हैं । कहते हैं—

सिद्धाण नमो किच्चा, सजयाण च भावओ । इत्यादि

भेद से तीन प्रकार का है। द्विपद मे तीर्थंकर महान् हैं। चतुष्पद मे सरभ अर्थात् अष्टापद पक्षी महान् है। अपद में पुण्डरीक-कमल महान् है। वृक्षादि अपद जीवो मे कमल महान् है। अचित्त महान् मे चिन्तामणि रत्न महान् है। मिश्र महान् मे राज्य सम्पदा युक्त तीर्थंकर का शरीर महान् है। तीर्थंकर का शरीर तो दिव्य होता ही है किन्तु वे जो वस्त्रा भूषणादि धारण करते है वे भी महान् हैं। स्थापना के कारण वस्तु का महत्व बढ जाता है। अत मिश्र महान् मे वस्त्राभूषण-युक्त तीर्थंकर शरीर है।

७ पडुच्च अपेक्षा महान्- सरसो की अपेक्षा चना महान् है और चने की अपेक्षा बेर महान् है।

८ भाव महान्- टीकाकार कहते हैं कि प्रधानता से क्षायिकभाव महान् है और आश्रय की अपेक्षा पारिणामिक भाव महान् है। पारिणामिक भाव के आश्रित जीव और अजीव दोनो है। किसी आचार्य का यह भी मत है कि आश्रय की दृष्टि से उदय भाव महान् है क्योंकि ससार के अनन्त जीव उदय भाव के ही आश्रित हैं। इस प्रकार जुदा जुदा मत हैं। किन्तु विचार करने से मालूम होता है कि आश्रय की अपेक्षा पारिणामिक भाव महान् है। इस मे सिद्ध और ससारी दोनो प्रकार के जीव आ जाते हैं। अत प्रधानता से क्षायिक भाव और आश्रय से पारिणामिक भाव महान् हैं।

यहा महा निर्ग्रन्थ कहा गया है सो द्रव्य क्षेत्र आदि की दृष्टि से नही किन्तु भाव की दृष्टि से कहा गया है। जो महापुरुष पारिणामिक भाव से क्षायिक मे वतते हैं

उनको महान् कहा है ।

अब निर्ग्रन्थ शब्द का अर्थ समझ लेना चाहिये । ग्रन्थ शब्द का अर्थ होता है- गाठ । गाठे दो प्रकार की होती हैं । द्रव्य गाठ और भाव गाठ । जो द्रव्यओ र भाव दोनो प्रकार के बन्धनो से रहित होता है उसे निर्ग्रन्थ कहते हैं । द्रव्य ग्रन्थी नौ प्रकार की हैं और भाव ग्रन्थी १४ (चौदह) प्रकार की हैं ।

कोई व्यक्ति द्रव्य ग्रन्थी अर्थात् धन दौलत स्त्री पुत्र मकानादि छोड दे किन्तु भाव ग्रन्थी अर्थात् क्रोधमानादि विकार न छोडे तो वह निर्ग्रन्थ न कहा जायगा । निर्ग्रन्थ होने के लिये निश्चय और व्यवहार दोनो प्रकार की ग्रन्थी छोडना आवश्यक है । यह बात ठीक है कि सिद्ध पन्द्रह प्रकार के होते हैं और उनमे गृहलिङ्ग सिद्ध भी होते हैं जो द्रव्य परिग्रह नही छोडते किन्तु वे भाव की अपेक्षा से सिद्ध होते हैं । द्रव्य से तो स्वलिङ्गी ही सिद्ध होते हैं । जिन्होने द्रव्य और भाव दोनो प्रकार के बन्धन या ग्रन्थी छोड दी है वे निर्ग्रन्थ हैं और जिन्होने सर्वथा प्रकार से ग्रन्थी परिग्रह का त्याग कर दिया है वे महा निर्ग्रन्थ हैं । कोई द्रव्य ग्रन्थी को छोडता है तो कोई भाव ग्रन्थी को । अत यहा यह समझ लेना चाहिये कि जिन्होने दोनो प्रकार की ग्रन्थिया छोड दी हैं वे महानिर्ग्रन्थ हैं ।

ऐसे महान् निर्ग्रन्थ के चरित्र का आश्रय लेकर गुरु शिष्य को उपदेश देते हैं । कहते हैं—

सिद्धाए नमो किच्चा, सजयाए च भावओ । इत्यादि

अर्थात्- मैं अर्थ की शिक्षा देता हूँ। गृहस्थ लोग अर्थ का मतलब धन करते है किन्तु यहाँ धन कमाने की शिक्षा नही दी जाती किन्तु सब सुखो का मूल स्रोत रूप धर्म की शिक्षा दी जाती है। निर्ग्रन्थ धर्म की शिक्षा देता हूँ।

आज कल के बहुत से लोग जो कोई उपदेशक आता है, उसी के बन बैठते हैं। किन्तु शास्त्र कहते हैं कि तुम किसी व्यक्ति विशेष के अनुयायी नही हो। तुम निर्ग्रन्थ धर्म के अनुयायी हो। जो निर्ग्रन्थ धर्म की बात कहे उसे मानो और जो इसके विपरीत कहे, उसे मत मानो। निर्ग्रन्थ धर्म का प्रतिपादन निर्ग्रन्थ प्रवचन करते है। निर्ग्रन्थ प्रवचन द्वादशांगो मे विद्यमान हैं। जो शास्त्र या ग्रन्थ द्वादश अंगो मे रही हुई वाणी का समर्थन करते है या पुष्टि करते हैं, वे निर्ग्रन्थ प्रवचन ही हैं। किन्तु जो ग्रन्थ बारह अंगो की वाणी का खण्डन करते हो, उन मे प्रतिपादित किसी भी सिद्धान्त के विरुद्ध प्ररूपणा करते हो, वे निर्ग्रन्थ प्रवचन नही हैं। जो निर्ग्रन्थ प्रवचन का अनुयायी होगा वह ऐसे किसी ग्रन्थ या शास्त्र को न मानेगा जो द्वादशांग वाणी से समर्थित न हो। मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन से मिलती हुई सभी बातें मानता हूँ, चाहे वे किसी भी ग्रन्थ या शास्त्र मे कही गई हो। निर्ग्रन्थ प्रवचन से विरुद्ध कोई बात मानने के लिए मैं तैयार नही हूँ।

शास्त्र के आरम्भ मे चार बातें होना जरूरी है। इन चारो बातो को अनुबन्ध चतुष्टय कहा गया है। वे चार बातें ये हैं। १ प्रवृत्ति २ प्रयोजन ३ सम्बन्ध ४ अधिकारी। किसी भी कार्य की प्रवृत्ति के विषय मे पहले विचार

किया जाता है । किसी नगर मे प्रवेश करने के पूर्व उसके द्वार का पता लगाया जाता है । यदि द्वार न हो तो नगर मे नही जाया जा सकता । अनुबन्ध चतुष्टय मे कही गई चार बातो का विचार रखने से शास्त्र मे सुख से प्रवृत्ति हो सकती है । अनुबन्ध चतुष्टय से शास्त्र की परीक्षा भी हो जाती है । जैसे लाखो मन अनाज और हजारो गज कपडे की परीक्षा उनके नमूने से हो जाती है । शास्त्र मे जो कुछ कहा जाने वाला हो उनकी बानगी प्रथम गाथा मे ही बतादी जाती है जिससे वाचको को मालूम हो जाता है कि अमुक ग्रन्थ मे क्या विषय होगा ।

पहले प्रवृत्ति होना चाहिए । अर्थात् यह शास्त्र वाचक को कहा ले जायगा, उसका कोई उददेश्य होना चाहिए । किस मकसद को लेकर ग्रन्थ आरम्भ किया जाता है, यह पहले बताना चाहिए । आप जब घर से बाहर निकलते हैं तब कोई न कोई उद्देश्य जरूर नक्की कर लेते हैं कि अमुक स्थान पर जाना है । यह बात अलग है कि उद्देश्य भिन्न भिन्न हो सकते है । किन्तु यह निश्चित है कि हर प्रवृत्ति का कोई न कोई उद्देश्य जरूर होता है । दूध देही लेने के इरादे से निकला हुआ व्यक्ति दूध दही मिलने के स्थान की तरफ जायगा और शाक भाजी के इरादे से निकला हुआ व्यक्ति साग बाजार की ओर जायगा । जो जिस उद्देश्य से निकला है वह उसकी पूर्ति जिधर होती है उधर ही जाता है । जिसने मुक्ति पाने के लिए घर छोडा है वह मुक्ति की ओर जायगा । अत प्रथम शास्त्र का उद्देश्य बताया जाता है ।

शास्त्र का उद्देश्य अर्थात् विषय जान लेने के बाद

प्रयोजन जानना जरूरी है। इस शास्त्र के पढने से किस प्रयोजन की सिद्धि होगी, यह बात दूसरे नम्बर पर है। प्रयोजन के बाद अधिकारी का विचार किया जाता है। इस शास्त्र का अध्ययन मनन करने के लिए कौन व्यक्ति पात्र है, और कौन अपात्र है। इसके बाद शास्त्र का सम्बन्ध बताना चाहिए। किस प्रसग से यह शास्त्र बना है, कौन वस्तु कहा से ली गई है, इस शास्त्र का कहने वाला कौन है और सुनने वाला कौन है आदि बताया जाना चाहिए।

इन चारो बातो से शास्त्र की परीक्षा भी हो जाती है यह पहले कह दिया गया है। इस महा निर्ग्रन्थ अध्ययन मे ये चारो बाते हैं, यह बात इसके नाम से ही प्रकट है। अभी समय कम है अत फिर कभी अवसर होने पर अपनी बुद्धि के अनुसार यह बताने की चेष्टा करूगा कि किस प्रकार अनुबन्ध चतुष्टय का इस अध्ययन मे समावेश है।

अब इसी बात को व्यावहारिक ढग से कहा जाता है जिससे कि सामान्य समझ वाले व्यक्ति भी सरलता से समझ सकें। यह सबकी इच्छा रहती है कि महान् पुरुष की सेवा की जाय लेकिन महान् का अर्थ समझ लेना चाहिए। भागवत मे कहा है कि—

> महत्सेवा द्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वार योषितासगिसगम्।
> महान्तस्ते समचित्ता प्रशान्ता विमन्यव सुहृद साधवो ये॥

अर्थात् मुक्ति का द्वार महान् पुरुषो की सेवा करना है और नरक-द्वार कामिनी की सगति करने वाले की सोहबत करना है। महान् वे हैं जो समचित्त हैं, प्रशान्त हैं, क्रोध

रहित हैं, सब के मित्र और साधु चरित हैं ।

महान् पुरुष की सेवा को मोक्ष का द्वार बताया गया है और कनक कामिनी मे फसे हुओ की सेवा को नरक का द्वार । इस पर से हमारी उत्सुकता बढ जाती है कि महान् पुरुष कौन है जिसकी उपासना करने से हमारे बन्धन टूट जाते हैं । जो बडी-बडी जागीरें भोगते है, अच्छे गहने और कपडे पहनते हैं, आलीशान बगलो मे निवास करते हैं, उन्हे महान् समझे अथवा किन्ही दूसरो को ?

जैन शास्त्रानुसार इसका खुलसा किया ही जायगा किंतु, पहले भागवत पुराण के अनुसार महापुरुष की व्याख्या समझ ले । भागवत पुराण कहता है कि इस प्रकार की उपाधि वालो को महान् नही मानना चाहिए । महान् उसे समझना चाहिए जो समचित्त हो । महान् पुरुष का चित्त सम होना चाहिए । शत्रु और मित्र पर समभाव होना चाहिए । जिसका मन आत्मा मे हो, पुद्गल मे न हो, वह समचित्त है और वही महान् भी है ।

समचित्त का अर्थ जो वस्तु जैसी है, उसे वैसा ही मानना भी है । आत्मा चैतन्य स्वरूप है और जड पदार्थ पुदगल रूप है । इन दोनो को जुदा मानना तथा इनके धर्म भी जुदा जुदा मानना समचित्त का लक्षण है । कोई यह शका कर सकता है कि कार्माण शरीर की अपेक्षा से ससारी जीव के पीछे अनादि काल से उपाधि लगी हुई है, जिससे यह मेरा कान है, यह मेरी नाक है, यह मेरा मुख है आदि रूप से जड वस्तुओ को भी अपनी मानता है तब वह समचित्त कैसे रहा ? यह ठीक है कि उपाधि के कारण जीवात्मा

परवस्तु को भी अपनी कहता है लेकिन उपाधि को उपाधि मानना, यह भी समचित्त का लक्षण है ।

यदि कोई व्यक्ति रत्न को ककर कहे और ककर को रत्न कहे तो वह मूर्ख गिना जाता है । जब कि रत्न और ककर दोनो ही जड वस्तु हैं । कोई व्यक्ति जगल मे जा रहा था । भ्रमवश उसने सीप को चादी मान लिया और चादी को सीप । उसके मान लेने से सीप चादी नही हो गई और न चादी ही सीप हो गई । किसी के उल्टा मान लेने से वस्तु अन्यथा नही हो जाती । किन्तु ऐसा मानने या कहने वाला जगत् मे मूर्ख गिना जाता है । इसी प्रकार जड को चैतन्य और चैतन्य को जड कहने मानने वाले भी अज्ञानी समझे जाते हैं । इसी अज्ञान के कारण जीव मेरा-तेरा कहा करता है । जो इस प्रकार की उपाधि मे फसे हैं, वे महान् नही हैं । वे जड पदार्थ के गुलाम है । वे आत्मान दी नही कहे जा सकते । महान् वे हैं, जो खुद के शरीर को भी अपना नही मानते । अन्य वस्तुओ के लिए तो कहना ही क्या ? व्यावहारिक भाषा से ज्ञानी जन भी मेरा शरीर, मेरा कान, नाक आदि कहेंगे मगर निश्चय मे वे जानते हैं कि ये सब हमारे नही हैं । कहने का साराश यह है कि समचित्त वाले उपाधि को उपाधि मानते हैं ।

अब इस बात पर भी विचार करें कि महान् की सेवा किसलिए करें ? कोई यह ख्याल करके महापुरुष की सेवा करे कि वे उसके कान मे मन्त्र फू[illegible] पर हाथ धर देंगे तो वह ऋद्धिशाली हो [illegible] अपमान करना है । यह महान् [illegible]

जायगी किन्तु माया की सेवा गिनी जायगी। जो इस भावना से महान् पुरुष की सेवा करता है कि मैं अनन्त काल से ससार की माया जाल मे फसा हुआ हूँ, अज्ञान के कारण दुःख सहन कर रहा हूँ, जड को अपना मान बैठा हूँ, इन सबसे महापुरुष की सेवा करके छुटकारा पाऊ, उसकी सेवा सफल है। ऐसी सेवा ही मुक्ति का द्वार है।

समचित्त वालो को कोई लाखो गालिया दे तो भी उनके मन मे किंचित् विकार नही आता। कहते हैं कि एक वार पूज्य श्री उदयसागरजी महाराज रतलाम शहर मे सेठजी के वाजार मे और शायद उन्ही के मकान मे विराजते थे। उस समय रतलाम वहुत उन्नत शहर माना जाता था और सेठ भोजाजी भगवान् की खूब चलती थी। पूज्य श्री की प्रशसा सुनकर एक मुसलमान भाई के मन मे उनकी परीक्षा लेने की भावना पैदा हुई। अवसर देखकर वह एक दिन उनके ठहरने के मकान पर उपस्थित हुआ। उस समय पूज्य श्री स्वाध्याय तथा अन्य धर्मक्रियाए कर रहे थे। उस मुसलमान ने जैसी उसके मन मे आई वैसी अनेक गालिया दी। उसकी गालिया ऐसी थी कि सुनने वाले को गुस्सा आये विना न रहे। किन्तु पूज्य श्री समचित्त थे। वे गालिया सुनकर भी विकृत न हुए। हसते ही रहे। उनके चेहरे पर किसी प्रकार की तब्दीली के चिह्न नजर न आये। आखिर वह मुसलमान हाथ जोड कर पूज्य श्री से कहता है कि आप सचमुच वैसे ही हैं जैसी मैंने आपकी प्रशसा सुनी है। वास्तव मे आप सच्चे फकीर हैं। माफी मांगकर वह चला जाता है।

लेक्चर झाडते वक्त श्रोताओ को प्रशान्त रहने का उपदेश देना वडा सरल है किन्तु प्रशान्त रहने का मौका

आये तब प्रशात रहना बडा कठिन है । महान् वह है जो सहन करने के अवसर पर सहनशीलता दिखाता है । कोई पूछ सकता कि क्या दूसरो की गालियां सुनते रहना और उनकी उदण्डता मे सहायता करना सहन शीलता है ? हां, महान् पुरुष वह है जो गालियाँ सुनते वक्त भी शान्तचित्त रहता है । महान् उन गालियो को अपने लिए नही मानते । वे उनमे से भी अपने अनुकूल सार बात ग्रहण कर लेते हैं। जब उनसे कोई यह कहे कि "ओ दुष्ट यह क्या करते हो" तब वे अपने सम्बोधन मे कहे हुए दुष्ट विशेषण से भी कुछ न कुछ नसीहत ग्रहण करते हैं । महान् पुरुष अपने लिये दुष्ट शब्द का प्रयोग सुनकर यह विचार करते हैं कि जिन कार्यों के करने से मनुष्य दुष्ट बनता है, वे कार्य मुझ मे तो नही पाये जाते ? यदि दुष्टता कि कोई बात उनमे पाई जाती हो तो वे आत्मनिरीक्षण करके उसे बाहर निकाल फेकते हैं और दुष्ट कहने वाले का उपकार मानते हैं, किन्तु यदि उन्हे आत्मनिरीक्षण के बाद यह ज्ञात हो कि उनमे दुष्ट बनाने की कोई सामग्री नही है तो वे ख्याल करके दुष्ट कहने वाले को माफ कर देते हैं कि यह किसी अन्य के लिए कहता होगा अथवा भूल या अज्ञान से कह रहा होगा। अज्ञानी और भूल करने वाले सदा क्षमा करने योग्य होते हैं । मेरे समान वेषभूषा वाले किसी अन्य व्यक्ति को दुष्टता करते देखकर इसने मेरे लिए भी दुष्ट शब्द का व्यवहार किया है-किन्तु इस मे इसकी भूल है । यह सोचकर महान् अपनी महत्ता का परिचय देते हैं ।

मान लीजिये आपने सफेद साफा बाध रखा है । किसी ने आपको बुलाने के लिए पुकारा कि ओ काले साफे वाले

इधर आओ । क्या आप यह बात सुनकर नाराज होगे ? नही । आप यही विचार करगे कि मेरे सिर पर सफेद साफा है और यह काले साफे वाले को बुला रहा है, सो किसी अन्य को बुलाता होगा अथवा यह भी ख्याल कर सकते हैं कि भूल से सफेद शब्द के बजाय काला शब्द इसके मुख से निकल गया है । ऐसा विचार करने पर न क्रोध आयेगा और न नाराज होने का प्रसग ही । इसके विपरीत यदि आपने यह ख्याल कर लिया कि यह मनुष्य मुझे काले साफे वाला कैसे कहता है, इसकी भूल का मजा इसे चखाना चाहिए तो मानना होगा कि आपको अपने सिर पर बाधे हुए सफेद साफे पर विश्वास ही नही है ।

यदि लोग इस सिद्धान्त को अपना लें तो ससार मे झगडे टटे ही न रहें । सर्वत्र शाति छा जाय । पिता-पुत्र या सास बहू मे झगडे इसी कारण होते है कि एक समझता है 'मैं ऐसा नही हूँ फिर भी मुझे ऐसा कैसे कह दिया' ? इसके बजाय यदि यह समझने लगे कि जब मैं ऐसा हूँ ही नही, तब इसका ऐसा कहना व्यर्थ है । तब अशाति या झगडे का कोई कारण खडा ही नही हो सकता। आप लोग निर्ग्रंथ मुनियो की सेवा करने वाले हो, अत सहनशीलता का यह गुण अपनाओ और समचित्त बन कर आत्मा का कल्याण करो । ससार मे कोई किसी का अपमान नही कर सकता। हमारा आत्मा ही हमारा अपमान करता है ।

स्वय कृत कम यदात्मना पुरा फल तदीय लभते शुभाशुभम् ।
परेणदत्त यदि लभ्यते ध्रुव स्वय कृत कम निरर्थक तदा ॥

अर्थ— हमारी आत्मा ने पहले शुभ या अशुभ जो भी

कृत्य किया है उसी का फल अब मिल रहा है। यह माना जाय कि दूसरा व्यक्ति हमारा शुभ या अशुभ कर रहा है तो खुद का किया हुआ कृत्य व्यर्थ हो जायगा।

कहने का साराश यह है जो प्रसग पर क्रोधादि विकारो का काबू मे रख सके और सामने वाले को अपने प्रेम पूर्ण बर्ताव से जीत सके, वही महान् है और वही समचित्त भी है। ऐसे पुरुष जड पदार्थों के वश मे नही होते। वे यह सोचते हैं कि—

जीव नवि पुग्गली नव पुग्गल कदा पुग्गलाधार नहीं तास रगी।
परतणो ईश नही अपर ए एश्वयता वस्तु धर्म कदा न परसगी॥

श्री देवचद्र चौवीसी

जिस व्यक्ति की परमात्मा के साथ लौ लगी होगी, वह यह सोचेगा कि मैं पुद्‌गल नही हूँ और पुदगल भी मेरे नहीं है। मैं पुद्‌गलो का मालिक बन कर भी नही रहना चाहता तो उनका गुलाम होने की बात ही क्या है?

आज लोगो को जो दुःख है वह पुद्‌गलो का ही है। वे पुद्‌गलो के गुलाम बन रहे हैं। यदि धैर्य रखा जाय तो पुदगल उनके गुलाम बन सकते हैं। किन्तु लोग धैर्य छोड कर पुद्‌गल के पीछे पडे हुए हैं, इसी से दुःख बढ रहा है। यह दुःख दूसरो का लाया हुआ नही है किन्तु अपने खुद के अज्ञान के कारण से ही है।

श्री समयसार नाटक मे कहा है कि—

कहे एक सखी सयानी, सुन री सुबुद्धि रानी, तेरो पति दुखी लग्यो और यार है

महा अपराधी छहो माही एक नर सोई दुख देत लाल दीसे नाना पार है ।
कहे आलो सुमति कहा दोष पुद्गल को आपनो हो भूल लाल- होता आपा वार है ।
खोटो नाणो आपको शराफ कहा लागे वीर काहुको न दोष मेरो भोदू भरतार है ।

इस प्रकार सब दोष या मूर्खता हमारी आत्मा की ही है । पुद्गलो का क्या दोष है ? अत पुद्गलो पर से ममता छोडो । हाय हाय करने से कुछ लाभ न होगा ।

अब सुदर्शन की कथा कही जाती है । मुझे सुदर्शन से किसी प्रकार का लेन-देन नही है । पुद्गल को छोडने वाले सब महात्माओं को मेरा नमस्कार है । सुदर्शन ने भी पुदगलो पर से ममता हटाई है अत उसका गुणानुवाद किया जाता है और धन्य-धन्य कहा जाता है । पुदगल माया को छोडकर जो महात्मा आगे बढे हैं उनको नमस्कार करने से हमारा आत्मा निर्मल बनता है और आगे बढता है ।

चम्पापुरी नगरी अति सुदर दधिवाहन तिहा राय ।
पटरानी अभया अति सुन्दर रूप कला शोभाय ।। रे धन०

सुदर्शन को मैंने अकेले ने ही धन्यवाद नही दिया है किन्तु आप सबने भी दिया है । क्यो धन्यवाद दिया गया, इसका विचार करिये । यदि वह सेठ था तो अपने घर का था । इससे हमे क्या मिलना था ? हम लोगो ने उसको सेठाई के कारण धन्यवाद नही दिया है किन्तु उसने धर्म का पालन किया है, अत धन्यवाद दिया है । वस्तुत यह

धन्यवाद धर्म को दिया गया है। हम लोग सुदर्शन को धन्यवाद देते हैं। किंतु कोरा धन्यवाद देकर ही न रह जाय। हम भी इनके पद चिह्नों पर चलें तभी धन्यवाद देना सार्थक है। उनके गुणों का अनुसरण न किया तो हमारा बड़ा दुर्भाग्य होगा। कल्पना करिये कि एक आदमी भूखा है। वह भूख से कराह रहा था। वह सेठ के घर गया। उस समय सेठ स्वर्णथाल में परोसे हुए विविध व्यंजनों का भोग कर रहे थे। सेठ को भोजन करते देखकर वह भूखा व्यक्ति कहने लगा कि सेठ तुम धन्य हो, जो ऐसे पदार्थ भोग रहे हो। मैं अन्न के बिना तरस रहा हूँ, भूखों मर रहा हूँ। यह सुनकर सेठ ने कहा कि भाई! आ तू मेरे साथ बैठ जा और भोजन करले, भूख का दुःख मिटाले! सेठ के द्वारा भोजन का प्रेमपूर्ण निमन्त्रण मिलने पर भी यदि वह व्यक्ति यह कहे कि नहीं नहीं मैं न खाऊँगा, मुझे भोजन नहीं करना है तो वह व्यक्ति अभागा समझा जायगा!

इस बात को आप अच्छी तरह समझ गये होंगे। ऐसे निमन्त्रण को आप कभी इंकार न करेंगे। न कभी ऐसी भूल ही करेंगे। भूल तो धर्म कार्य में होती है। जिस चारित्र धर्म का पालन करने के कारण आप सुदर्शन को धन्यवाद दे रहे हैं वह चारित्र धर्म आपके सामने भी मौजूद है। आप धन्यवाद देकर न रह जाइये किन्तु उस चारित्र धर्म का पालन करिये जिसके पालन से सेठ धन्यवाद के पात्र बने हैं। धन्यवाद दे लेने से आत्मा को भूख न मिटेगी। सुदर्शन के समान आप धर्म पर दृढ़ न रह सको तो भी उसके कुछ अंश का तो अवश्य पालन कीजिये। उसका चरित्र सुनकर उसके चरित्र का कुछ अंश भी यदि जीवन

मे उतार सको तो आपका दुर्भाग्य मिटेगा और सौभाग्य का उदय होगा। ससार की सब वस्तुए नाशवान् है। आप इस अविनाशी धर्म को क्यो नही अपनाते ? आप कहेगे कि हम सुदर्शन के समान कैसे बन सकते है ? खैर, सुदर्शन के ठीक समान न बने तो भी उसके चरित्र मे से कुछ बातें अवश्य अपनाइये। कोशिश तो सब बातें अपनाने की करनी चाहिए। कीडी यह कहकर अपनी चाल को नही रोकती कि मैं हाथी की बराबरी नही कर सकती हूँ। वह हाथी के समान नही चल सकती तो भी चलना जारी रखती है और अपने खाने तथा घर बनाने का ऐसा प्रयत्न करती है कि जिसे देखकर बडे बडे वैज्ञानिकों को दग रह जाना पडता है। आप भी अपनी शक्ति व सामर्थ्य के अनुसार आगे बढ़ने का प्रयत्न कीजिये।

सुदर्शन की कथा कहने के पूर्व क्षेत्र का परिचय दिया गया है। क्षेत्री का वर्णन करने के लिये क्षेत्र का परिचय आवश्यक है। शास्त्र मे भी यही शैली है। वर्णन तो भगवान् महावीर स्वामी का करना था किन्तु प्रसग से साथ ही चम्पा नगरी का भी वर्णन दे दिया है जैसे—

तेए कालेए तेए समयेए चम्पा नामे नयरी होत्था।

सुदर्शन सेठ की कथा कहने से पहले वह कहा हुआ था, यह बताना आवश्यक था और यहां बताया गया है।

कोई यह पूछ सकता है कि क्या क्षेत्र के साथ क्षेत्री का कोई सम्बन्ध होता है ? हाँ, क्षेत्री का क्षेत्र के साथ बहुत सम्बन्ध होता है। सूत्रो मे क्षेत्र विपाकी प्रकृतियो का बयान

आता है। एक आदमी भारत का निवासी है और दूसरा यूरोप का। क्षेत्र विपाकी गुण दोनो मे जुदा-जुदा होगे। यह बात दूसरी है कि कोई अपने विशेष प्रयत्न के द्वारा उस गुण को मिटा दे या अधिक बढा दे।

मनुष्य और पशु मे जो भेद है वह क्षेत्र के कारण ही है। आत्मा दोनो की समान है। आत्मा समान होने से कोई मनुष्य को पशु या पशु को मनुष्य नही कहता। क्षेत्र विपाकी प्रकृति के कारण भेद होता है। उसे भुलाया नहीं जा सकता।

आप भारतीय हैं। भारत मे जन्म लेने से भारत का क्षेत्र विपाकी गुण आप मे होना स्वाभाविक है। आज आपकी दस्तार, रफ्तार और गुफ्तार कैसी हो रही है? आप जरा गौर कीजिए। दस्तार यानी कपड़े, रफ्तार यानी पहनावा और गुफ्तार यानी बातचीत। आप भारतीय हैं मगर क्या आपको भारतीय भाषा प्यारी लगती है? प्रिय न लगे तो यह अभाग्य ही है। अन्य देश वाले भारत की प्रशंसा करें और भारतीय स्वय अपने देश की अवहेलना करें, यह अभाग्य नही तो क्या है? आज भारत के निवासी दूसरे देशो की बहुत-सी बातो पर मुग्ध हो रहे हैं। वे यह नही सोचते कि दूसरे देशो की जिन बातो पर हम मुग्ध हो रहे हैं, वे कहा से सीखी हुई है। वे बातें भारत से ही अन्य देशो ने सीखी हैं। हम हमारा घर भूल गये हैं। हमारे घर मे क्या क्या था, यह बात हम नही जानते। अब दूसरों की नकल करने चले हैं।

एक आदमी दूसरे आदमी के यहा से बीज ले गया

जो कि उसके आगन मे बिखरे पड़े थे। उसने बीज ले जाकर बोये तथा वृक्ष और फल-फूल तैयार किए। एक दिन पहला व्यक्ति दूसरे के खेत मे चला गया और कहने लगा, तुम बड़े भाग्यशाली हो, जो ऐसे सुन्दर वृक्ष तथा फल फूल लगा सके हो। दूसरे ने कहा, यह आप ही का प्रताप है जो मैं ऐसे वृक्ष लगा सका हूँ। आपके यहा से बिखरे हुए बीज मैं ले गया था, जिनका यह परिणाम है। यह बात सुनकर पहले आदमी को अपने घर मे रखे बीजो का ध्यान आया। इसी प्रकार विदेशो मे जो तत्व देखे जा रहे हैं, वे भारत के ही हैं। हा, वहा के लोगो ने उन तत्वो की विशेष खोज अवश्य की है मगर बीजरूप मे वे भारत से ही लिए हुए हैं। दूसरो की बातें देखकर अपने घर को मत भूल जाओ। घर की खोज करो।

सुदर्शन चम्पा नगरी का रहने वाला था। जैन और बौद्ध साहित्य मे चम्पा का बहुत वर्णन है। चम्पा का पूरा विवरण उववाई सूत्र मे है किन्तु उसमे से तीन बातें कह देने से श्रोताओ का ख्याल आ जायगा कि चम्पा कैसी थी। चम्पा का वर्णन करते हुए उववाई सूत्र मे कहा गया है—

तेण कालेण तेण समयेण चम्पा नाम नगरी होत्था रिद्धीए ठिम्मिए समिद्धे

इन तीनो विशेषणो से चम्पा का पूरा परिचय हो जाता है। नगर मे तीन बातें होना आवश्यक है। प्रथम ऋद्धि होना आवश्यक है। हाट, महल, मन्दिर, बागबगीचे तथा जल स्थल के स्वच्छ निवास ऋद्धि मे गिने जाते हैं। किसी नगर मे केवल ऋद्धि हो किन्तु यदि समृद्धि न हो

तो नगर की शोभा नहीं हो सकती । समृद्धि के न होने से लोग भूखों मरने लगें । चम्पा नगरी धन धान्य से समृद्ध थी । धन के साथ धान्य की भी अवश्यकता है । केवल धन हो और धान्य न हो तो यह कहावत लागू होती है कि—

सोना नी चलचलाट, अन्ननी कलकलाट ।

जीवन निभाने के लिए धान्य की भी पूरी आवश्यकता होती है । धन और धान्य कहने से जीवनोपयोगी प्राय सब वस्तुए आ जाती हैं । जीवनोपयोगी वस्तुओं के लिए चम्पा नगरी किसी की मोहताज न थी । वहा सब आवश्यक चीजें पैदा होती थी । प्राचीन समय मे भारत के हर ग्राम मे जीवनोपयोगी चीजे पैदा होती थी और इस दृष्टि से भारत का हर ग्राम स्वतन्त्र था । ऐसा न था कि अमुक चीज आना बन्द हो गया है, अत अब क्या किया जाय ?

पुरातन साहित्य हमे बताता है कि उस समय भारत का प्रत्येक ग्राम स्वतन्त्र था । कोई भी गाव ऐसा न था कि जहाँ आवश्यक अन्न और वस्त्र पैदा न हो । अन्न तो सब जगह पैदा होना ही था किन्तु वस्त्र भी सब गावो मे बनाये जाते थे । जहा रुई न होती थी, वहा ऊन होती थी, जो रुई से भी मुलायम थी । हर ग्राम मे कपड़े बुनने वाले लोग रहते थे । इस प्रकार भारत का हर गाँव स्वतन्त्र था, नगर तो स्वतन्त्र थे ही । उनमे विशेष कला-प्रधान चीजें होती थी ।

चम्पा मे ऋद्धि भी थी और समृद्धि भी । ऋद्धि और समृद्धि के होने पर भी स्वचक्री राजा के अभाव मे कष्ट होता

है । चम्पा इस बात से भी वंचित न थी । 'ठिम्मिए' विशेषण यही बतलाता है कि चम्पा की प्रजा बहादुर थी । उसे न स्वचक्री राजा लूट सकता था और न परचक्री । अपने राजा का अत्याचार भी प्रजा सहन नही करती थी और न अन्य देशस्थ राजा का । जो स्वय निर्बल होता है, उसी पर दूसरो का जोर चलता है । सबल पर किसी का बल नही चलता । लोग कहते है कि देवी बकरे का दान मागती है । मैं पूछता हूँ कि देवी बकरे का बलिदान ही क्यो मागती है, शेर का क्यो नही ? बकरा निर्बल है और शेर सबल है, अत ऐसा होता है ।

शास्त्र मे चम्पा का इस प्रकार वर्णन है । कोई भाई यह कहे कि महाराज त्यागी लोगो को इस प्रकार वर्णन करने की क्या आवश्यकता थी, तो उसका उत्तर यह है कि फल बताने के पूर्व वृक्ष का और बीज का परिचय करना भी जरूरी होता है । जो फल बताया जा रहा है, वह जादू का तो नही है । अत फल के पहले वृक्ष का वर्णन भी आवश्यक है । शील के साथ चम्पा का भी इसीलिए वर्णन है । इस वर्णन को सुनकर आप भी सच्चे नागरिक बनिये और शील का पालन कर आत्मकल्याण कीजिये ।

राजकोट

७—७—३६ का

व्याख्यान

8 : धर्म का अधिकारी

"मल्लि जिन बाल ब्रह्मचारी ।"

यह भगवान् मल्लिनाथ की प्रार्थना है। यदि इस प्रार्थना के विषय मे कोई महावक्ता सिद्धात की खोज करके व्याख्यान दे तो बहुत लोगो की उल्टी समझ दूर हो जाय, ऐसा मेरा ख्याल है। मुझे शास्त्र का उपदेश करना है अत इस विषय मे इतना ही कहता हूँ कि भक्ति और प्रार्थना के मार्ग मे पुरुषो को अभिमान नही करना चाहिए अभिमान भूले विना भक्तिमार्ग पर नही चला जा सकता अहकार दूर किए विना भक्तिमार्ग प्राप्त नही हो सकता। हम पुरुष हैं, इस बात का अहकार त्याग कर, चाहे स्त्री हो चाहे पुरुष, जो भी महापुरुष हुए हैं, उन सब की भक्ति मे तल्लीन हो जाना चाहिए।

बहुत से पुरुष स्त्रीजाति को तुच्छ गिनते हैं और अपने को बडा मानते हैं किन्तु यह उनकी भूल है। दुनिया मे सब से बडा पद तीर्थङ्कर का है। जब कि स्त्री तीर्थंकर हो सकती है, वैसी हालत मे वह तुच्छ कैसे मानी जा सकती है और पुरुष को किस बात का अभिमान करना चाहिए?

मत अहकार छोड कर विचार करो और गुणो के स्थान पर द्वेष मत लाओ ।

भगवान् मल्लिनाथ को नमस्कार करके अव मैं उत्तराध्ययन सूत्र के वीसवे अध्ययन की बात शुरू करता हूँ । कल महा और निर्ग्रन्थ शब्दो के अर्थ बताये गये थे । इस द्वादशाग वाणी को सुनने से क्या-क्या लाभ हैं, यह बताने के लिए पूर्वाचार्यों ने बहुत प्रयत्न किए है। उन्होने शास्त्र की पहिचान के लिए अनुवन्ध-चतुष्टय किया है । इस वीसवें अध्ययन मे यह अनुवन्ध-चतुष्टय कैसे घटित होता है, यह देखना है । हम इस बात को जाच करें कि इस अध्ययन मे भी विषय, प्रयोजन, अधिकारी और सम्बन्ध हैं या नहीं ।

वीसवें अध्ययन का विषय उसके नाम मात्र से ही प्रकट है । अध्ययन का नाम महानिर्ग्रन्थ अध्ययन है, जिससे स्पष्टतया मालूम हो जाता है कि इस अध्ययन मे महान् निर्ग्रन्थ की चर्चा होगी । नाम के सिवा प्रथम गाथा मे यह स्पष्ट कहा गया है कि मैं अर्थ धर्म मे गति कराने वाले तत्व की शिक्षा देता हूँ । इसमे यह बात निश्चित हो गई कि इस अध्ययन मे सामारिक बातो की चर्चा न होगी । किन्तु जिन तत्वो से पारमार्थिक मार्ग मे गति हो सके उनकी चर्चा होगी ।

अब इस बात का विचार करे कि इस पारमार्थिक चर्चा से ससार को क्या लाभ होगा । आज ससार मे इस प्रकार के मलीन विचार फैले हुए हैं कि जिनके कारण धार्मिक उपदेश और उसका प्रभाव बेकार सा साबित हो

रहा है। मैले कपडे पर रग नही चढता, मैले कपडे पर रग चढाने के लिए पहिले उसे साफ करना पडता है। इसी प्रकार हृदय रूपी वस्त्र यदि मैला हो तो उस पर उपदेश रूपी रग नही चढ सकता। यह बात स्वाभाविक है। मुझे यकीन है कि आपके सब कपडे मलीन नही हैं अर्थात् आपका हृदय सर्वथा मलीन नही है। यदि सर्वथा मलीन होता तो आप यहा व्याख्या श्रवणार्थ भी उपस्थित न होते। आप यहा आये हैं, इससे यह प्रकट है कि आपका हृदय सर्वथा गन्दा नही है। जो थोडी बहुत गदगी भी हृदय मे रही हुई है, उसे दूर किए बिना धर्म का रग अच्छी तरह नही चढ सकता।

शास्त्रकारो का कथन है कि धर्मस्थान पर जाने के पूर्व घर से निकलते ही पहले 'निस्सीही' शब्द का उच्चारण करना चाहिए। धर्मस्थान पर पहुच कर भी निस्सीही कहना चाहिए। फिर गुरु के पास जाकर भी निस्सीही कहना। इस प्रकार तीन बार निस्सीही शब्द का उच्चारण करने का क्या कारण है? घर से निकलते वक्त निस्सीही कहने का मतलब यह है कि धर्मस्थान पर जाने के पूर्व ही सासारिक प्रपञ्चपूर्ण विचारो को मन से निकाल देना चाहिए। निस्सीही शब्द का अर्थ है, पापपूर्ण क्रियाओ का निषेध करना, उनको रोक देना।

जो ससार के कामो और विचारो को छोड कर धर्मस्थान पर जाता है, वही पुरुष धर्मस्थान मे पहुचने के मकसद को सिद्ध कर सकता है। जो घर से व्यवहार के प्रपञ्चो को दिमाग मे रख कर धर्मस्थान पर जाता है, वह वहा जाकर क्या करेगा? वह धर्मस्थान मे भी

प्रपञ्च ही करेगा। धर्म का क्या लाभ ग्रहण करेगा ? धम स्थान तक पहुंचने के बाद 'निस्सीही' इसलिये कहा जाता है कि धर्मस्थान तक तो गाडी घोडा आदि सवारी पर सवार होकर भी जाया जाता है लेकिन धर्मस्थान मे ये सवारिया नही जा सकती, अत इनका निषेध भी इष्ट है।

धर्मस्थान तक पहुच कर अन्दर कैसे प्रवेश करना, इसके लिये पाच अभिगमन शास्त्रो मे बताये गये है। भगवान् या अन्य महात्माओ के दर्शन के लिए धर्मस्थान मे पहुचने पर पाच अभिगमन का वर्णन शास्त्रो मे आया है। प्रथम अभिगमन सचित्त द्रव्य का त्याग है। साधु के पास पान फूल आदि सचित्त द्रव्य नही ले जा सकते। अत उनको त्याग कर फिर दर्शनार्थ जाना चाहिये। दूसरा अभिगमन उन अचित्त द्रव्यो का भी त्याग करके साधु के पास जाना चाहिये, जिनका त्याग जरूरी हो। अस्त्र शस्त्रादि पास हो तो उन्हे छोड कर साधु के समीप जाना चाहिये। शस्त्रादि लेकर साधु के पास जाना अनुचित है तथा वस्त्रादि का सकोच करना भी दूसरे अभिगमन मे है। इसका अर्थ नगे होकर साधु दर्शनार्थ जाना नही है। किन्तु जो वस्त्र बहुत लबे हो और जिनसे पास वालो की आसातना हो सकती है, उनका त्याग करना चाहिये। तीसरा अभिगमन उत्तरा-सग करना है। चौथा अभिगमन जिनके दर्शनार्थ जाना है वे ज्योही दृष्टिपथ मे पडे कि तुरन्त हाथ जोड लेना चाहिये। अर्थात् नम्रतापूर्वक-धर्म स्थान मे पहुचना चाहिये। पाचवा अभिगमन मन को एकाग्र करना है।

साधु के समीप पहुच कर 'निस्सीही' कहने का अभि-

प्राय यह कि मैं समस्त सासारिक प्रपञ्चो का निषे
करता हूँ । निस्सीही का उच्चारण भी कर लिया गया है
और अभिगमन भी कर लिए गये हों किन्तु यदि मन संसा
की बातों मे गुथा हुआ ही रहा तो धर्मस्थान में पहुंच
का उद्देश्य हासिल नहीं हो सकता । अत मन को एका
करके यह निश्चय करना चाहिए कि हमें श्रेय सि
करना है ।

साराश यह कि यदि आपको सिद्धात सुनने की रु
है तो मन को स्वच्छ बना कर आईये । मन स्वच्छ बनान
का भार मुझ पर डाल कर मत आईये । धोबी का काम
धोबी करता है और रगरेज का काम रगरेज करता है ।
दोनो का काम एक पर डालने से वजन बढ़ जाता है ।
मैं आप पर धर्म के सिद्धान्तो का रग चढाना चाहता हूँ ।
रग चढ़ाया जा सकता है । किन्तु शर्त यह है कि आपका
मनरूपी वस्त्र स्वच्छ होना चाहिये । मन स्वच्छ बना कर
लाने का काम आपका है और उस पर धर्म का रग चढाने
का काम मेरा है । धोबी वस्त्र को जितना साफ निकाल
कर लायेगा, रगरेज उतना ही आबदार रग चढा सकेगा ।
रगरेज को यश दिलाने का काम धोबी पर निर्भर है ।
आप लोगो की तरह यदि मुझे भी मान-प्रतिष्ठा की चाह
हृदय मे बनी रही तो मैं धर्म का सच्चा उपदेश न दे
सकूँगा । धर्म का उपदेश देने के लिये उपदेशक को भी स्वच्छ
बनना चाहिए । उपदेशक और श्रोता दोनो स्वच्छ हों, तभी
धर्म का रग अच्छी तरह चढ सकता है ।

इस अध्ययन का विषय तो बता दिया गया है ।

लेकिन अब यह जानना चाहिए कि इस अध्ययन के कहने का क्या प्रयोजन है ? धर्म मे गति कराना इस अध्ययन का प्रयोजन है । अर्थात् साधुजीवन की शिक्षा देना, इस अध्ययन का प्रयोजन है ।

आप कहेगे कि यदि साधु-जीवन की शिक्षा देना ही इस अध्ययन का प्रयोजन है तो हम गृहस्थ लोगो को यह अध्ययन आप क्यो सुनाना चाहते हैं ? पहले आप लोग यह बात समझ लें कि साधुजीवन की शिक्षाए आपको भी सुननी आवश्यक हैं या नही ? आपने अपने जीवन का ध्येय क्या नक्की किया है ? आप गृहस्थ आश्रय मे हैं और साधु साध्वाश्रम मे हैं । सब क्रियाए अपने अपने आश्रम के अनुसार करना ही शोभनीय है । किन्तु गृहस्थ होने का अर्थ यह नही है कि वह धर्म का पालन न करे । यदि गृहस्थ धर्म का पालन नही कर सकते हो तो भगवान् जगत्-गुरु कैसे कहलाते ? भगवान् साधु-गुरु कहलाते । भगवान् जगत् गुरु कहलाते हैं । गृहस्थ जगत् मे है, अत गृहस्थ भी धर्म-पालन का अधिकारी ही है । दूसरी बात गृहस्थ जीवन का उद्देश भी आगे जाकर साधुजीवन व्यतीत करने का है, अत बात आगे जाकर आचरणो मे लानी है, उसका श्रवण पहले से ही कर लिया जाय तो क्या हानि है ? अत यह शिक्षा गृहस्थो के लिये भी उपयोगी है ।

श्रेणिक राजा गृहस्थ था । उसने साधु-जीवन की शिक्षाए सुनी थी । यद्यपि वह साधुजीवन स्वीकार न कर सका तथापि साधु-जीवन की शिक्षाए सुन कर तीर्थंकर गोत्र बाव सका था । आपको इस शिक्षा की जरूरत क्यो

नही है ? जरूरत अवश्य है । आप यहा किसी सासारिक कामना की पूर्ति करने के लिये नही आये हैं किन्तु धर्म करने की आपकी रुचि है, अत आये है । इस प्रकार इस धर्म शिक्षा से आप गृहस्थो का भी प्रयोजन है । यदि यह शिक्षा केवल साधुओ के काम की ही होती तो साधु लोग किसी एकान्त शान्त स्थान मे बैठ कर चर्चा कर लेते। आप गृहस्थो के बीच मे आकर इसका वर्णन न करते। गृहस्थो को भी इस शिक्षा की आवश्यकता है, यह अनुभव करके ही आपको यह सुनाई जा रही है । श्रेणिक राजा नवकारसी तप भी न कर सका था किन्तु यह शिक्षा सुन हृदय मे धारण करके तीर्थङ्कर गोत्र बाध सका था । आप लोग भी श्रेणिक के समान गृहस्थ हो, अत इस शिक्षा की जरूरत है ।

प्रयोजन बता दिया गया है । अब इस अध्ययन के अधिकारी का विचार करना है । कौन २ व्यक्ति इस अध्ययन की शिक्षा सुनने या ग्रहण करने के पात्र हैं ? जिस प्रकार सूर्य सबके लिये है, सब उसका प्रकाश ग्रहण कर सकते हैं । किसी के लिये भी प्रकाश ग्रहण की मनाही नही है । उसी प्रकार यह अध्ययन सबके लिये है । इतना होने पर भी सूर्य का प्रकाश वही देख सकता है, जिसके आखें हो और वे खुली हो तथा विकार-रहित हो । जिसकी आखो मे उल्लू की तरह किसी प्रकार का विकार हो, वह सूर्य का प्रकाश ग्रहण नही कर सकता । इस अध्ययन की शिक्षा का अधिकारी भी वही है, जिसके हृदय-चक्षु खुले हुए हैं । किन्ही लोगो के हृदय-चक्षु खुले हुए होते हैं और किन्ही के अज्ञान रूपी आवरण से ढके हुए होते हैं । जिनके

हृदय-चक्षु बन्द हैं किन्तु खोलने की चाह है, वे भी इस अध्ययन के श्रवण करने के अधिकारी है । यह शिक्षा हृदय पट के आवरण को भी हटाती है किन्तु आवरण हटाने की इच्छा होनी चाहिये । कहने का भावाथ यह कि जो इस शिक्षा से लाभ उठाना चाहे, वही इसका अधिकारी है ।

अब इस अध्ययन के सम्बन्ध के विषय मे विचार कर लें । सम्बन्ध दो प्रकार के होते हैं । १ उपायोपेय भाव सम्बन्ध २ गुरु-शिष्य सम्बन्ध ।

पहले-गुरु शिष्य सम्बन्ध का विचार करे कि यह शास्त्र किस गुरु ने कहा है और किस शिष्य ने सुना है ?

भगवान् ने फरमाया है कि मोक्ष की इच्छा मात्र होने से मोक्ष कागजो से नही मिल जाता, कोरे सूत्र वाचने से मुक्ति नही मिल सकती । सद्गुरु अथवा सदुपदेशक की आवश्यकता होती है । कुगुरु मोक्ष का नाम लेकर विपरीत मार्ग में भी ले जा सकते हैं, अत प्रथम यह जान लेना चाहिए कि धर्म का सच्चा उपदेशक कौन हो सकता है ? शास्त्र मे कहा भी है कि—

आयगुत्ते सयादन्ते छिन्नसोये अणासवे ।
ते धम्म सुद्धमक्खन्ति पडिपुन्न मणेलिस ॥

अर्थात्—धर्म का उपदेश वे कर सकते हैं, जिन्होने अपने मन पर काबू कर लिया हो, जो सदा विकारो पर काबू रखते हो, जिनका शोक नष्ट हो, जो पाप-रहित हो । ऐसे सदा दान्त सन्त पुरुष ही प्रीतिपूर्ण और शुद्ध अनुपम

धर्म का उपदेश कर सकते हैं। पहले यह देखना जरूरी है कि अमुक ग्रन्थ या पुस्तक का रचयिता कौन है? ग्रन्थकार की प्रामाणिकता पर ग्रथ की प्रामाणिकता है। आजकल के बहुत से अधकचरे विद्वान् कहते हैं कि ग्रथकार के व्यक्तिगत जीवन से तुम्हे क्या मतलब है? तुम्हे तो वह जो शिक्षा देता है, उसे देखो कि वह ठीक है या नही। किन्तु ऐसा कहने वाले व्यक्ति भ्रम मे हैं। शास्त्रकार कहते हैं कि धर्म का उपदेशक वही हो सकता है, जो अपनी आत्मा को गुप्त रखता हो, जो सयमरूपी ढाल मे इन्द्रियो को उसी प्रकार काबू मे रखता हो, जिस प्रकार कछुआ अपने अगो को ढाल मे रखता है। इन्द्रियदमन करने वाला ही सच्चा उपदेशक या लेखक हो सकता है।

किसने इन्द्रियदमन कर लिया है और किसने नहीं किया है, इसकी पहचान यह है कि जिसकी आखो मे विकार न हो, शारीरिक चेष्टाए शात और पापशून्य हो। इन्द्रियदमन का अर्थ आख, कान आदि इन्द्रियो का नाश कर देना नहीं है किन्तु उनके पीछे रही हुई पाप-भावना को मिटा देना है। आख से धर्मात्मा भी देखता है और पापी भी। किन्तु दोनो की दृष्टि मे बडा अन्तर होता है। धर्मात्मा पुरुष किसी स्त्री को देख कर उसके सुधार का उपाय सोचेगा और पापी पुरुष उसी स्त्री को देख कर अपनी वासना पूर्ति का विचार करेगा। जिस प्रकार घोडे को शिक्षा देकर मन मुताबिक चलाया जाता है, उसी प्रकार जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियो को मन माफिक चला सकता है, उनका गुलाम नहीं किन्तु मालिक बन सकता है, वही इन्द्रियदमन करने वाला कहा जाता है। घोडे का मालिक लगाम के जरिये घोडे

को कुमार्ग मे नही जाने देता । उसी प्रकार इन्द्रिय-दमन करने वाला इन्द्रियो को विषय विकार की तरफ नही जाने देता । भगवद् भजन करने मे उनका उपयोग करता है । यही इन्द्रिय-दमन का अर्थ है ।

धर्मोपदेशक हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह इन पाच पापो से रहित होना चाहिए । जो सब स्त्रियो को मा बहिन के समान समझता हो और धर्मोपकरण के सिवाय फूटी कोडी भी अपने पास न रखता हो अर्थात् जो कचन और कामिनी का त्यागी हो, वही धर्मोपदेशक हो सकता है और वही प्रीतिपूर्ण, शुद्ध और अनुपम धर्म का उपदेश दे सकता है ।

मैंने हिन्दू धर्म के विषय मे गाधीजी का लिखा एक लेख देखा है । गाधीजी ने उस समय तक जैन शास्त्र देखे थे या नही, यह मैं नही कह सकता । किन्तु जो सच्ची बात होगी, वह शास्त्र मे अवश्य निकल आयगी । गाधीजी ने उस लेख मे यह बताया था कि हिन्दू-धर्म का कौन उपदेश कर सकता है ? कोई पण्डित या शकराचार्य ही इस धर्म का कथन कर सकता है, यह बात नही है । किन्तु जो पूर्ण अहिंसक, सत्यवादी और ब्रह्मचारी हो, वही हिन्दू धर्म को कहने का अधिकारी हो सकता है । गाधीजी के लेख के पूरे शब्द मुझे याद नही हैं किन्तु उनका भाव यह था । गाधीजी और जैन शास्त्रो के विचार इस विषय मे कितने मिलते हैं, इस पर विचार करियेगा ।

प्रकृत बीसवें अध्ययन के उपदेशक गणधर या स्थविर मुनि हैं । यह गुरुशिष्य सम्बन्ध हुआ । अब तात्कालिक उपायोपेय सम्बन्ध देख लें । दवा करना उपाय है और रोग

मिटाना उपेय है। इस अध्ययन का उपायोपेय सम्बन्ध है ज्ञान प्राप्ति और इसके द्वारा मुक्ति। मुक्ति उपय है और ज्ञान प्राप्ति उपाय है।

ससार मे उपाय मिलना ही कठिन है। यदि उपाय मिल जाय और वह किया जाय तो रोग मिट सकता है। डाक्टर और दवा दोनो का योग होने पर बीमारी चली जाती है। किसी बाई के पास रोटी बनाने का सामान मौजूद न हो तो वह रोटी कैसे बना सकती है? यदि रोटी बनाने की सब सामग्री तैयार हो तो रोटी बनाने मे कोइ कठिनाई नही हो सकती।

रोटी बनाने की सब सामग्री तैयार रखी हो परन्तु यदि कर्ता रोटी बनाने वाला किसी प्रकार का प्रयत्न न करे तो रोटी कैसे बन सकती है? आटा और पानी अपने आप नही मिल सकते और न रोटी स्वय पक सकती है। कर्त्ता के उद्योग के किये बगैर सब साधन या उपाय किस काम के? आप अपने लिए विचार करिये कि आपको क्या करना चाहिए? गफलत की नींद छोड कर जागृत हो जाइये जिससे धर्मकरणी के लिए मिले हुए साधन या उपाय व्यर्थ न हो जाय। आपको आर्यक्षेत्र, उत्तम कुल और मनुष्य जन्म मिले है। यह क्या कम सामग्री है? आपकी उम्र भी पक चुकी है। आप तत्वज्ञान समझ सकते हो। बहुत से लोग तो कच्ची उम्र मे ही चल बसते हैं। यदि आप भी बचपन मे ही चल बसते तो आपको कौन उपदेश देने आता? बालक, रोगी और अव्यक्त धर्म के अधिकारी नहीं माने जाते। उनको कोई धर्म का उपदेश नहीं करता।

अत ज्ञानीजन कहते है कि उठ जाग ! कब तक सोता रहेगा ?

> उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
> क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया, दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ॥

अर्थात्—हे मनुष्यो ! उठो जागो और श्रेष्ठ मनुष्यो के पास जा कर ज्ञान प्राप्त कर लो । कारण कि ज्ञानीजन कहते हैं कि उस्तरे की धार पर चलना जितना कठिन है, उतना ही इस विकट मार्ग (धर्म मार्ग) पर चलना कठिन है ।

जिस प्रकार प्रात काल माता अपने पुत्र से कहती है कि ऐ पुत्र ! उठ जाग, खडा होजा, इतना दिन निकल आया है, कब तक सोता पडा रहेगा ? उसी प्रकार ज्ञानी जन भी माता के प्रेम के समान प्रेम से सब जीवो पर दया लाकर कहते है कि ऐ मनुष्यो ! किस गफलत मे पडे हुए हो ? उठो जागो । भाव-निद्रा का त्याग करो । विषय कषायादि विकारो को छोड कर आत्मकल्याण के मार्ग मे लग जाओ वैराग्य शतक मे ज्ञानी सोते हुए प्राणियो को जगाते हुए कहते हैं—

> मा सुवह, जग्गियव्व, पल्ला इयवम्मि किस्स विस्समिह ।
> तिन्नि जणा अणुलग्गा रोगो जराए मच्चुए ॥

हे जिवात्माओ ! मत सोओ ! जाग जाओ । रोग, जरा और मृत्यु तुम्हारे पीछे पडे हुए हैं । यह बात बहुत विचारणीय है, अत एक कथा द्वारा इस मुद्दे को सरल बना कर कहता हूँ ।

मिटाना उपेय है। इस अध्ययन का उपायोपेय सम्बन्ध है ज्ञान प्राप्ति और इसके द्वारा मुक्ति। मुक्ति उपेय है और ज्ञान प्राप्ति उपाय है।

ससार मे उपाय मिलना ही कठिन है। यदि उपाय मिल जाय और वह किया जाय तो रोग मिट सकता है। डाक्टर और दवा दोनो का योग होने पर बीमारी चली जाती है। किसी बाई के पास रोटी बनाने का सामान मौजूद न हो तो वह रोटी कैसे बना सकती है ? यदि रोटी बनाने की सब सामग्री तैयार हो तो रोटी बनाने मे कोई कठिनाई नही हो सकती।

रोटी बनाने की सब सामग्री तैयार रखी हो परन्तु यदि कर्त्ता रोटी बनाने वाला किसी प्रकार का प्रयत्न न करे तो रोटी कैसे बन सकती है ? आटा और पानी अपने आप नही मिल सकते और न रोटी स्वय पक सकती है। कर्त्ता के उद्योग के किये बगैर सब साधन या उपाय किस काम के ? आप अपने लिए विचार करिये कि आपको क्या करना चाहिए ? गफलत की नीद छोड कर जागृत हो जाइये जिससे धर्मकरणी के लिए मिले हुए साधन या उपाय व्यर्थ न हो जाय। आपको आर्यक्षेत्र, उत्तम कुल और मनुष्य जन्म मिले हैं। यह क्या कम सामग्री है ? आपकी उम्र भी पक चुकी है। आप तत्वज्ञान समझ सकते हो। बहुत से लोग तो कच्ची उम्र मे ही चल बसते हैं। यदि आप भी बचपन मे ही चल बसते तो आपको कौन उपदेश देने आता ? बालक, रोगी और अशक्त धर्म के अधिकारी नही माने जाते। उनको कोई धर्म का उपदेश नही करता।

अत ज्ञानीजन कहते है कि उठ जाग ! कब तक सोता रहेगा ?

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया, दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ॥

अर्थात्—हे मनुष्यो ! उठो जागो और श्रेष्ठ मनुष्यो के पास जा कर ज्ञान प्राप्त कर लो । कारण कि ज्ञानीजन कहते हैं कि उस्तरे की धार पर चलना जितना कठिन है, उतना ही इस विकट मार्ग (धर्म मार्ग) पर चलना कठिन है ।

जिस प्रकार प्रातःकाल माता अपने पुत्र से कहती है कि ऐ पुत्र ! उठ जाग, खडा होजा, इतना दिन निकल आया है, कब तक सोता पडा रहेगा ? उसी प्रकार ज्ञानी जन भी माता के प्रेम के समान प्रेम से सब जीवो पर दया लाकर कहते हैं कि ऐ मनुष्यो ! किस गफलत मे पडे हुए हो ? उठो जागो । भाव-निद्रा का त्याग करो । विषय कषायादि विकारो को छोड कर आत्मकल्याण के मार्ग मे लग जाओ वैराग्य शतक मे ज्ञानी सोते हुए प्राणियो को जगाते हुए कहते हैं—

मा सुवह, जग्गियव्व, पल्ला इयवम्मि किस्स विस्समिह ।
तिन्नि जणा अणुलग्गा रोगो जराए मच्चुए ॥

हे जिवात्माओ ! मत सोओ ! जाग जाओ । रोग, जरा और मृत्यु तुम्हारे पीछे पडे हुए हैं । यह बात बहुत विचारणीय है, अत एक कथा द्वारा इस मुद्दे को सरल बना कर कहता हूँ ।

दो मित्र जगल मे जा रहे थे । उन मे से एक थक गया । थकने के साथ ही उसे कुछ आधार मिल गया । पास ही अच्छे घने वृक्ष हैं । सुन्दर नदी बह रही है, सपाट चट्टान सामने है और हवा भी शीतल मन्द और सुगन्ध युक्त चल रही है । यह सब अनुकूल सामग्री देख कर थका हुआ मित्र सो जाने के लिए ललचाया । वह मन मे मन सूबे बाधने लगा कि यहाँ बैठकर शीतल वायु का सेवन करना चाहिए । सुन्दर फल खाना और पुष्पो की सुगन्ध लेना चाहिए । नदी की कलकल आवाज सुनते हुए निद्रा लेकर प्रकृति के सुख का अनुभव करना चाहिए ।

दूसरा मित्र प्रकृति-ज्ञान मे निपुण था । वह जानता था कि ये फूल कैसे हैं, यह हवा कैसी है तथा नदी की यह कल-कलाट क्या शिक्षा दे रही है ? यह स्थान कितना उपद्रवयुक्त है, यह भी वह जानता था । उस ज्ञानी मित्र ने अपने भूले हुए दोस्त से कहा कि हे प्रिय मित्र ! यह स्थान सोने के लिए उपयुक्त नही है । जल्दी उठ खडा हो और शीघ्र ही यहा से भाग चल । एक क्षण मात्र का भी विलम्ब मत कर । यहा तीन जने पीछे पडे हुए हैं । जिन फल-फूलो को देख कर तेरा जी ललचाया है, वे फल-फूल विषयुक्त हैं । यहा की हवा भी विषैली है । जो वातावरण तुझे अभी आकर्षित कर रहा है, वही थोडी देर में तुझे विवश बना देगा और तेरा चलना-फिरना भी बद हो जायगा । यह नदी भी शिक्षा दे रही है कि जिस प्रकार कल-कल करता हुआ मेरा पानी प्रतिक्षण बहता चला जा रहा है, उसी प्रकार तेरी आयु भी क्षण-क्षण घटती जा रही है ।

क्या सोवे उठ जाग बाउरे ।
अंजलि जल ज्यों आयु घटत है देत पहरिया घरिय घाउ रे ।।क्या०।।
इन्द्र चन्द्र नागेन्द्र मुनि चल कौन राजा पतिसाह राउ रे ।
भमत भमत भव जलधि पालते भगवन्त भक्ति सुभाउ नाउ रे ।।क्या०।।
क्या विलम्ब अब करे बाउरे तर भव जलनिधि पार पाउ रे ।
आनन्दघन चेतन मय मूरति शुद्ध निरञ्जन देव ध्याउ रे ।।क्या०।।

शास्त्रकार ग्रन्थकार, कवि और महात्मा सब का कथन यही है कि हे जीवत्माओ ! उठो । जागो । गफलत की नींद मत सोओ ।

कोई भाई कहेगा कि क्या आप हमको साधु बनाना चाहते हैं ? मैं पूछता हूँ कि क्या साधुपन बुरी चीज है ? यदि साधुपन बुरी वस्तु होता तो आप साधुओ का व्याख्यान ही कैसे सुनते ? साधुता शक्ति होने पर ही ग्रहण की जा सकती है । शक्ति न हो तो कोई साधुत्व स्वीकार करने की बात नही करता । आपको साधुत्व ग्रहण करने के सयोग मिले हुए हैं । अत जागृत हो जाइये ।

भगवन्त भक्ति स्वभाव नाउ रे ।

भगवान् की भक्ति रूप नौका मिली हुई है । उस नौका का सहारा लेकर ससार समुद्र पार कर जाइये । उस मित्र ने अपने थके हुए मित्र से कहा था कि हे दोस्त ! यदि तू भूल नही सकता तो सामने यह नौका खडी है । इस पर सवार होकर पार लग जा । अब तो इस मूर्ख मित्र को चलना भी नही पडता है फिर भी यदि वह नौका पर सवार न हो और गफलत मे सोया पडे रहे तो आप

करूगा । परन्तु उपदेष्टा तो निमित्त कारण है ।
न कारण आपका आत्मा है । यदि उपादान ही
न हो तो निमित्त क्या कर सकता है ? निमित्त के साथ
'न शुद्ध होना चाहिए । किसी घडी को जब तक
दी जाती रहे, तब तक वह चलती रहे और चाबी
वद करते ही यदि बद हो जाय तो आप उस घडी को
कहेगे ? यही कहेगे कि वह घडी खोटी है । इसी
ार मैं जब तक उपदेश देता रहूँ तब तक आप स्मरण
ते रहो और उपदेश सुन कर घर पहुचते ही यदि उसे
ा जाओ तो यह सच्चापन नही गिना जायगा । इस बात
र ध्यान दीजिए और गफलत को छोडिये ।

आपके सामने भगवद् भक्ति रूपी नाव खडी है ।
ाप यदि उस पर बैठ गये तो क्या कमी हो जायगी ?
तुलसीदासजी ने कहा है—

> जगनभ वाटिका रही है फली फूली रे ।
> धुआ के से धौरहर देखिहू न भूली रे ।।

ससार की वाडी जैसे आसमान मे तारे छिटक रहे हो
वैसे फली फूली हुई है । मगर यह बाडी स्थायी नही है । अत
ससार की भूलभुलैया मे न फसकर परमात्मा के भजन
स्वरूप नौका मे बैठ कर ससारसमुद्र पार कर लें ।

आजकल बहुत से भाइयो का यह ख्याल है कि हमे
परमात्मा के भजन करने की कोई आवश्यकता नही है ।
वे कहते हैं कि जो लोग परमात्मा का भजन किया करते
हैं, वे दु खी देखे जाते हैं और जो कभी परमात्मा का नाम

तक नही लेते बल्कि धर्म और परमात्मा का 'बायकाट' करते हैं, वे लोग सुखी देखे जाते हैं। इस सवाल का जवाब यह है कि केवल परमात्मा का नाम लेना ही सुखी बनने का कारण नही है। किन्तु नामस्मरण के साथ परमात्मा के बताये हुए नियमो का पालन करना भी जरूरी है। कोई प्रकट रूप मे परमात्मा का नाम न लेता हो किन्तु उसके बताये नियमो का पालन करता हो तो वह सुखी होगा और कोई नियमो का पालन न करे और खाली नाम-रटन करता रहे तो उससे दुःख दूर नही हो सकते। जो प्रकट रूप से नाम नही लेता किन्तु नियम पालन करता है, वह सुख के साधन जुटाता है। अत यह कहना कि परमात्मा का नाम लेने से या भजन करने से कोई दुःखी है, बड़ी गलत धारणा है। भजन के साथ नियम आवश्यक है। एक आदमी ने गाडी मे बैठे हुए एक पहलवान को देखा। देख कर उसने यह धारणा बाध ली कि गाडी मे बैठने से आदमी पहलवान हो जाता है। उसे इस बात का भान न था कि पहलवान तो विशेष प्रकार की कसरत करने से बनता है। इसी प्रकार नियम पालने वाला प्रकट मे नाम नही लेता अत यह कह डालना कि नाम न लेने से सुखी है, भ्रमपूर्ण विचार है। परमात्मा का भजन तो करना मगर उसके बताये नियम न पालना, कैसा काम है? इस बात को एक दृष्टान्त से समझाता हूँ।

एक सेठ के दो स्त्रिया थी। बडी स्त्री गादी लगा कर हाथ मे माला लेकर अपने पति का नाम जपती रहती थी। दिन भर मोतीलालजी मोतीलालजी की रटन्त लगाती रहती और घर का कोई काम न करती थी। किन्तु इसके

विपरीत छोटी स्त्री घर का सब काम करती रहती थी। उसने अपने मन मे यह नक्की किया कि पति का नाम तो मेरे हृदय मे है। चाहे मुह से उसका उच्चारण करू या न करू। मुझे वे काम करते रहना चाहिये जिनसे पति देव प्रसन्न रहें। एक दिन बडी सेठानी सेठ के नाम की माला जपती हुई बैठी थी कि इतने मे कही बाहर से थके प्यासे सेठजी आ गये और उससे कहा कि प्यास लगी है, पानी का लोटा भर कर ला दे। बडी सेठानी ने उत्तर दिया कि इतनी दूर से चल कर आये हो सो तो नही थके और अब घर आकर थक गये। पानी का लोटा भी नही लाया जाता। मेरे नाम जपने मे क्यो बाधा पहुचाते हो। क्या आपको मालूम नही कि मैं किसका काम कर रही हूँ और किसका नाम ले रही हूँ ? मैं आप ही का नाम ले रही हूँ।

भाइयो ! बताइये क्या बडी सेठानी का नाम-जपन सेठजी को पसन्द आ सकता है ? सेठजी ने कहा-तेरा नाम-जपन व्यर्थ है। एक प्रकार का ढोग है। दोनो का वार्तालाप सुन कर छोटी सेठानी तुरन्त अच्छे कलशे मे ठण्डा पानी भर लाई और सेठजी की सेवा मे उपस्थित किया। इन दोनो स्त्रियो मे से सेठजी का मन किसकी ओर झुकेगा ? सेठजी किसके कार्य को पसन्द करेंगे ? कर्त्तव्य करने वाली के काम को ही सेठजी पसन्द करेंगे न कि कोरा नाम जपने वाली का काम। इसी प्रकार भक्त भी दो प्रकार के होते हैं। एक केवल नाम जपने वाले और दूसरे नियम-पालन या कर्त्तव्य करने वाले।

बहुत से लोग परमात्मा का नाम लेते हैं। किन्तु

आपको मालूम है कि वे किस लिए नाम लेते हैं ? वे 'रामनाम जपना और पराया माल अपना' करने के लिए नाम लेते हैं । इस तरह परमात्मा का नाम लेना दिखावा-मात्र है । नाम का महत्व नियम-पालन के साथ है ।

मतलब यह है कि कोई प्रकट मे प्रभुनाम लेता है और कोई प्रकट मे नाम न लेकर नियम-पालन करता है। किन्तु भक्ति नाम न लेने वाले मे भी मौजूद है क्योंकि वह कर्त्तव्य का पालन करता है । अत ऐसे व्यक्ति को सुखी देख कर यह न मान बैठना चाहिए कि यह नाम न लेने से सुखी है । आपके सामने भगवद् भक्ति की नाव खडी है। उसमे बैठ जाओ और भक्ति का रग चढालो।

ऐसा रग चढा लो दाग न लागे तेरे मन को ।

सुदर्शन चरित्र—

सच्चे भक्त कैसे होते हैं, इसका दाखला चरित्र द्वारा आपके सामने रखता हूँ । कल कहा गया था कि सुदर्शन को धन्यवाद दिया गया है । सुदर्शन को भक्ति का बाह्य-ढोंग रखने के कारण धन्यवाद नही दिया गया किन्तु भक्ति के अग का पूरी तौर से पालन करने के कारण धन्यवाद दिया गया है ।

सुदर्शन का जन्म चपापुरी मे हुआ था । चम्पापुरी का राजा दधिवाहन था। सुदशन के शीलपालन के साथ तथा इस कथा से सम्बन्ध रखने वाले पात्रो का परिचय करना आवश्यक है ।

राजा कैसा होना चाहिए, इसका शास्त्र मे वर्णन है। जो क्षमक्र और क्षेमधर हो, वही सच्चा राजा है । केवल अच्छे हाथी घोडे की सवारी करने वाला ही राजा नही होता किन्तु जो पहले की वधी हुई मर्यादाओ का पालन करे और नवीन उत्तम मर्यादाए वाधता हो, वह राजा है । क्षेम शब्द का अर्थ है कुशल । जो प्रजा की कुशल चाहता है, वह राजा है। ऐसा न हो कि खुद के महल उजले रखले और प्रजा के सुख दु ख का तनिक भी ख्याल न करे। वह राजा कहलाने का अधिकारी नही है । जो प्रजा मे प्रजा-हित के सुधार करता है और उसे सुखी वनाता है, वह राजा है ।

राजा स्वय क्षेम-कुशल करने वाला हो तथा पहले वधी हुई अच्छी और उपयोगी मर्यादाओ को तोडने वाला न हो । पुरानी मर्यादाओ को केवल पुरानी होने के कारण तोडना नही चाहिए । पुरानी मर्यादा के पालन के साथ ही साथ नवीन योग्य मर्यादा भी बाधना चाहिए । यह सच्चे राजा का लक्षण है । 'नवी करणी नही और पुराणी मेटनी नही' यह तो अच्छे राजा का चिह्न नही है ।

दधिवाहन राजा उपर्युक्त गुणो से युक्त था । उसके अभया नामक पटरानी थी । अभया के रूप सौन्दर्य के कारण राजा उस पर बहुत मुग्ध था । वह मानता था कि मेरी रानी स्त्रियो मे रत्न के समान है । जिस रानी पर राजा इतना मुग्ध था वही रानी सुदर्शन के शील की कसौटी बनी है । राजा जिस रानी का गुलाम वना हुआ था, उस रानी के भी वश मे न होने वाला सुदर्शन कैसा

होना चाहिए इस बात का जरा विचार करिये ।

नाटक मे पुरुष स्त्री का वेष धारते हैं और स्त्री की तरह नखरे दिखाने की चेष्टा करते हैं । ऐसा करने से कभी २ पुरुष बहुत अशो मे अपना पुरुषत्व भी खो बैठते हैं । नाटक मे स्त्री बने हुए पुरुष के हाव-भाव देख कर आप लोग बडे प्रसन्न होते हैं । जो खुद अपना पुरुषत्व भी खो चुका है, वह दूसरो को क्या शिक्षा देगा ?

आजकल लोगो को नाटक सिनेमा का रोग बहुत बुरी तरह लगा हुआ है । घर मे चाहे फाकाकसी करना पडे मगर सिनेमा देखने के लिए तो जरूर तैयार हो जायेंगे। रुपये खर्च होने के उपरान्त नाटक सिनेमा देखने से क्या २ हानिया होती हैं, इसका जरा ख्याल करिये । जब कि लोग बनावटी स्त्री पर भी इतने मुग्ध होते देखे जाते हैं, तब अभया पर राजा इतना मुग्ध हो, इस मे क्या आश्चर्य की बात है ? वह तो साक्षात् स्त्री थी और बहुत रूप-सम्पन्न थी । आश्चर्य तो इस बात मे है कि कहा तो आजकल के लोग जो बनावटी रूप मात्र देख कर मुग्ध बन जाते हैं और कहा वह सुदर्शन, जो रूप-लावण्य-सम्पन्न अभया पटरानी पर भी मुग्ध न हुआ ।

जब मैं अहमदनगर मे था, तब वहा के लोग मेरे सामने आकर कहने लगे कि एक नाटक कम्पनी आई है जो बहुत अच्छा नाटक करती है । देखने वालो पर अच्छा प्रभाव पडता है । इस प्रकार उन लोगों ने मेरे सामने उस नाटक मडली की बहुत प्रशसा की । उस समय मैंने उन

लोगो से यही कहा कि फिर कभी इस विषय मे समझाऊंगा ।

एक दिन मैं जगल गया था कि दैवयोग से नाटक मडली मे पार्ट लेने वाले लोग भी उधरही घूमते हुए जा रहे थे । वे लोग अपनी धुन मे मस्त होकर जा रहे थे । मैने उन लोगो की चेष्टाए और आपसी वातचीत सुनी । सुन कर मैं दग रह गया । क्या ये वे ही लोग हैं, जिनकी नाटक मण्डली की इतनी प्रशसा मेरे सामने की गई थी ? उनकी बातें और चेष्टाए इतनो गदी थीं कि कुछ कहा नही जा सकता । मैंने मन मे विचार किया कि ये लोग सीता, राम या हरिश्चन्द्र का पार्ट अदा करते है, किन्तु क्या दर्शको पर इनके खुद के भावो-विचारो का असर न होता होगा ? क्या केवल इनके द्वारा दिखाये या कहे हुए सीता, राम या हरिश्चन्द्र के कार्यों या गुणो का ही लोगो पर असर होता है ? या नाटक दिखाने वालो के व्यक्तिगत चरित्रो का भी प्रभाव दर्शको पर पडता है ? मैं पहले व्याख्यान मे कह चुका हूँ कि किसी ग्रथ या उपदेश की प्रामाणिकता उसके कर्त्ता या उपदेशक पर अवलम्बित है । फोनोग्राफ की चूडी से निकले हुए शब्दो का विशेष असर नही होता । असर होता है शब्दो के पीछे रही हुई चा रत्रशील आत्मा का ।

कदाचित् कोई भाई यह दलील करे कि हमे तो गुण ग्रहण करना है । हमे तो कोई कैसा है, इस बात से प्रयोजन नही । इसका उत्तर यह है कि यदि गुण ही लेना है और सामने वाले का आचरण नही देखना है तो नाटक मे साधु वन कर आये हुए साधु को आप लोग वदना नमस्कार क्यो नही

करते और उसे सच्चा साधु क्यो नही मानते ? आप कहेंगे कि वह तो नकली साधु है उसे असली कैसे मानेंगे ? मैं कहता हूँ कि जैसे साधु नकली है, वैसे अन्य पात्र भी नकली ही हैं। जगल से वापिस लौट कर व्याख्यान मे मैंने लोगो से खूब कहा कि ऐसे लोगो के द्वारा दिखाए हुए खेल से आपका कुछ कल्याण नही होने वाला है।

महारानी अभया वहुत सुन्दर थी और राजा दधिवाहन उस पर वहुत मुग्ध था। फिर भी सुदर्शन रानी पर मुग्ध न हुआ। उसके जाल मे न फसा। ऐसे ही महापुरुष की शरण लेकर भगवान् से प्रार्थना करो कि हे प्रभो ! ऐसे चारित्रशील व्यक्ति के चारित्र का अश हमको भी प्राप्त हो।

तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किया।

जो लक्ष्मीवान् की सेवा करता है क्या वह कभी भूखा रह सकता है ? जो भगवान् की शरण जाता है, वह भी उनके समान वन जाता है। वैसे ही शील धर्म का पालन करने वाले सुदर्शन की शरण ग्रहण करने से शील पालने की क्षमता अवश्य प्राप्त होगी।

यह चरित्र मनरूपी कपडे के मैल को साफ करने का काम भी करेगा। लोकनीति, शरीर-रक्षा और ससार व्यवहार की वातें भी इस चरित्र मे आयेंगी। आज समाज में जो कुरीतिया घुसी हुई हैं, उनके विरुद्ध भी इस चारित्र मे कुछ कहा जायगा। अत इस चरित्र को सावधान हो कर सुनिये और शील धर्म को अपना कर आत्म-कल्याण करिये।

राजकोट

८—७—३६ का व्याख्यान

९ : सिद्ध साधक

" श्री मुनि सुव्रत सायवा · । "

यह २० वें तीर्थंकर मुनि सुव्रत स्वामी की प्रार्थना है। आत्मा को परमात्मा की प्रार्थना कैसे करना चाहिए, यह वात अनेक विधियो और अनेक शब्दो द्वारा कही हुई है। प्रभु के अनेक नाम हैं। उन नामो को लेकर भक्तो ने अनेक रीति से प्रार्थना की है। इस प्रार्थना मे कहा गया है कि आत्मा को स्वदोपदर्शी होना चाहिए। सव लोगो की यह इच्छा रहती है कि हम हमारी प्रशसा ही सुनें। कोई हमारी निन्दा न करे। लेकिन ज्ञानी कहते है कि प्रशसा सुनने की आदत छोडकर अपने दोप देखने सुनने की आदत डालो। यह सुनने की कभी मन मे भावना न लाओ कि मेरे मे क्या क्या गुण हैं? किन्तु मेरे मे क्या दोप या त्रुटिया हैं, उनको जानने-सुनने की कोशिश करो। कदाचित् अभी आत्मा मे दोप न दिखाई दें तो भी यह मानना चाहिए कि मेरे मे पहले के वहुत से बुरे सस्कार विद्यमान हैं तथा अनादिकालीन ज्ञानावरणीयादि कर्म रूप दोप मुझमे भरे पडे हैं। अपने को सदोप मानकर परमात्मा से प्रार्थना करो कि हे भगवान्! मैं पाप का पुञ्ज हूँ, मुझ मे अनन्त पाप भरे हैं। अव मैं तेरी शरण मे आया हूँ। अत मुझे पाप मुक्त कर दे।

इस प्रकार की प्रार्थना वही कर सकता है, जो पाप को पाप मानता है, खुद को अपराधी मानकर स्वगुण-कीर्तन की वाछा नही रखता तथा अपनी कमजोरिया सुनने के लिए उत्सुक रहता है। जो अपने गुण सुनने के लिए लालायित रहता है, वह अभी प्रभु प्रार्थना से दूर है।

अब शास्त्र की बात कहता हूँ। कल कहा था कि इस वीसवें अध्ययन मे जो कुछ कहता है, वह सब पीठिका, प्रस्तावना या भूमिका रूप से प्रथम गाथा मे कह दिया गया है। इस गाथा का सामान्य अर्थ कर दिया गया है। अब व्याकरण की दृष्टि से विशेष अर्थ तथा परमार्थ रूप अर्थ करना वाकी है। इस गाथा मे जो शब्द प्रयुक्त किए गये हैं, उनसे किन-किन तत्वो का बोध होता है, यह टीकाकार बतलाते हैं।

मैंने पहले यह बताया था कि नवकार मत्र के पांच पदो मे दूसरा सिद्ध पद तो सिद्ध है और शेष चार पद साधक हैं। एक दृष्टि से यह बात ठीक है किन्तु टीकाकार दूसरी दृष्टि सामने रखकर अरिहन्त पद की गणना भी सिद्ध में करते हैं। इस दृष्टि से दो पद सिद्ध हैं और शेष तीन साधक हैं। अरिहन्त की गणना सिद्ध मे की जाती है। उसके लिए शास्त्रीय प्रमाण भी है। कहा है—

एव सिद्धा वदन्ति परमाणु।

अर्थात्—सिद्ध परमाणु को इस प्रकार व्याख्या करते हैं। सिद्ध बोलते नही। उनके शरीर भी नही होता। ऐसी हालत मे यह मानना पडेगा कि यहा जो सिद्ध शब्द का प्रयोग

किया गया है वह अरिहन्त वाचक ही है । इससे स्पष्ट है कि अरिहन्त की गणना भी सिद्ध पद मे है। शेप तीन पद आचार्य, उपाध्याय और साधु तो साधु हैं ही। उनका नाम निर्देश करके नमस्कार किया गया है ।

पुन यह प्रश्न खडा होता है कि जव अरिहन्त को नमस्कार कर लिया गया तव आचार्य, उपाध्याय और साधु को नमस्कार करने की क्या आवश्यकता है ? राजा को जव नमस्कार कर लिया गया तब परिषद् बाकी नही रह जाती। अरिहन्त राजा है । आचार्य, उपाध्याय, साधु उनकी परिषद् हैं । इन्हे अलग नमस्कार क्यो किया जाय ?

प्रत्येक कार्य दो तरह से होता है । पुरुप-प्रयत्न से तथा महापुरुपो की सहायता से । इन दोनो उपायो के होने पर कार्य की सिद्धि होती है । महापुरुपो की सहायता होना बहुत आवश्यक है किन्तु कार्य सिद्धि मे स्वपुरुपार्थ प्रधान है। अपना पुरुपार्थ होने पर ही महापुरुपो की सहायता मिल सकती है ? और तभी वह सहायता काम आ सकती है । कहावत भी है कि—

हिम्मते मरदा मददे खुदा

यदि मनुष्य स्वय हिम्मत करता है तो परमात्मा भी उसकी मदद करता है । जो खुद हिम्मत या पुरुपाथ नही करता, उसकी कोई कैसे मदद कर सकता है ? अत खुद, पुरुपार्थ करना चाहिये । मदद भी मिलती जायगी ।

अरिहन्त को नमस्कार करके आचार्यादि को नमस्कार करने का कारण उनसे सहायता प्राप्त करना है। यद्यपि काम

स्वपुरुषार्थ मे होता है, फिर भी महान् पुरुषो की सहायता की आवश्यकता रहती है। जैसे मनुष्य लिखता खुद है मगर सूर्य या दीपक के प्रकाश के बिना नही लिख सकता। लिखने मे प्रकाश की सहायता लेना अनिवार्य है। मनुष्य चलता खुद है मगर प्रकाश की मदद जरूरी है। उसके बिना चलते चलते खड्डे मे गिर सकता है। इसी प्रकार प्रत्येक काम मे महापुरुषो के सहारे की जरूरत रहती है।

परमात्मा की प्रार्थना के विषय मे भी यही बात है। यदि हृदय मे परमात्मा का ध्यान हो तो दुर्वासना उस समय टिक ही नही सकती। परमात्मा ध्यान और दुर्वासना का परस्पर विरोध है। एक समय मे दोनो का निर्वाह नही हो सकता। जब हृदय मे दुर्वासना न रहे तब समझना चाहिए कि अब उसमे ईश्वर का निवास है। यदि जानबूझ कर हृदय मे दुर्वासना रखे और ऊपर से परमात्मा का नाम लिया करे तो यह केवल ढोंग है, दिखावा है। सिद्ध और साधक दोनो की सहायता की अपेक्षा है, अत दोनो को नमस्कार किया गया है।

नमस्कार रूप मे जो प्रथम गाथा कही गई है, उसमे एक बात और समझनी है। गाथा मे कहा है कि सिद्ध और सयति को नमस्कार कर के तत्त्व की शिक्षा दूगा। इस कथन मे दो क्रियाए हैं। जब एक साथ दो क्रियाए हो तब प्रथम क्रिया क्त्वा प्रत्ययान्त होती है। इस क्रिया का प्रयोग अपूर्ण काम के लिये होता है। जैसे कोई कहे कि मैं अमुक काम करके यह काम करूगा। इसमे दो क्रियाए हैं। एक अपूर्ण और दूसरी पूर्ण। प्राकृत गाथा मे श्री आचार्य ने दो क्रियाए रख

कर एक बडे परमार्थ की सूचना की है। जैसे सूर्य को अधकार के साथ किसी प्रकार का द्वेष नही है और न वह अन्धकार का नाश करने के लिये ही उदय होता है। उसका उदय होने का स्वभाव है और अन्धकार का स्वभाव प्रकाश के अभाव मे रहने का है। अत सूर्य उदय से अन्धकार नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार ज्ञानियो का अज्ञानियो या अज्ञान के साथ किसी प्रकार का द्वेष नही है। सच्चे तत्व का प्रकाशन या निरूपण करने से असत्य या अज्ञान का खण्डन अपने आप ही हो जाता है। ज्ञानी के निरूपण से अज्ञानान्धकार नष्ट होता ही है।

इस गाथा मे जो क्रियाए है, उनसे भी ऐसा ही हुआ है। बौद्धो की मान्यता है कि आत्मा निरन्वय विनाशी है। किन्तु ज्ञानी कहते है कि यह बात सत्य नही है। आत्मा का निरन्वय नाश नही होता किन्तु सान्वय नाश होता है। पर्यायदृष्टि से आत्मा का नाश होता है, द्रव्यदृष्टि से नही। जैसे मिट्टी का घडा बनाया गया। मिट्टी का मिट्टी-रूप पर्याय नष्ट हो गया और घट पर्याय बन गया। मिट्टी का बिल्कुल नाश नही हुआ किन्तु रूप बदल गया है। यदि मिट्टी का निरन्वय नाश हो जाय तब तो घडा किसी हालत मे नही बनाया जा सकता। सोने के कडे को तुडवाकर हार बनवाया गया, यहा कडे का नाश हुआ है मगर निरन्वय नाश नही हुआ। कडा रूप पर्याय बदल गया और हार रूप बन गया। सोना दोनो अवस्थाओ मे कायम रहा। मतलब कि जगत् का हर पदार्थ द्रव्य रूप से नाश नही होता किन्तु पर्यायरूप से विनष्ट होता है। यदि द्रव्य ही नष्ट हो जाय तो फिर पर्याय किसका गिना जाय ?

इन गाथा मे दो क्रियाए दी गई हैं, जिनसे बौद्धो

की निरन्वय नाश मानने की बात खंडित हो जाती है। टीकाकार कहते हैं कि यदि आत्मा निरन्वय-नाशी हो तो गाथा मे दी गई दोनो क्रियाए निरर्थक हो जायगी। 'सिद्ध और सयति को नमस्कार करके तत्व की शिक्षा देता हूँ।' इस वाक्य मे 'नमस्कार करके' तथा 'शिक्षा देता हूँ' ये दो क्रियाए हैं। प्रथम नमस्कार किया गया और बाद मे शिक्षा देने का कार्य आरम्भ किया गया। दोनो क्रियाओ का कर्ता आत्मा एक ही है। यदि आत्मा का निरन्वय एकात नाश माना जाय तो दोनो क्रियाओ का प्रयोग व्यर्थ हो जायगा। आत्मा क्षण-क्षण विनष्ट होता है और वह भी सर्वथा नष्ट यदि होता है तथा उसकी पर्यायें ही नष्ट नही होती किन्तु वह खुद नष्ट हो जाता है तो वैसी हालत मे नमस्कार करने वाला आत्मा नष्ट हो जाता है। फिर शिक्षा कौन देगा ? अथवा यह मानना पडेगा कि शिक्षा देने वाला आत्मा दूसरा है क्योंकि नमस्कार करने वाला आत्मा तो क्षणविनाशी होने के कारण उसी समय नष्ट हो गया और शिक्षा देने के लिए कायम न रहा। इस प्रकार आत्मा को निरन्वय विनाशी मानने से उपर्युक्त दोनो क्रियाए व्यर्थ हो जाती हैं। किन्तु आत्मा बौद्धो की मान्यता मुताबिक एकान्त विनाशी नही है। आत्मा द्रव्य रूप से कायम रहता है। अत दोनो क्रियाए सार्थक हैं। दो क्रियाओं के प्रयोग मात्र से ही बौद्धो की क्षणवादिता का खण्डन हो जाता है।

आत्मा का एकान्त विनाश मानने से अनेक हानियां हैं। इस सिद्धात पर कोई टिक भी नही सकता। उदाहरण के लिये किसी आदमी ने दूसरे आदमी पर दावा दायर किया कि मुझे इससे अमुक रकम लेनी है, वह दिलाई जाय।

मुदायले ने कोर्ट मे हाकिम के समक्ष यह बयान दिया कि यह दावा बिलकुल झूठा है। कारण यह है कि रुपये देने वाला मुद्दई और रुपये लेने वाला मुदायला दोनो ही कभी के नष्ट हो चुके है। हाकिम ने मन मे सोचा कि यह देनदार चालाकी करके सिद्धान्त की ओट मे बचाव करना चाहता है। अत उसने उस आदमी को कैद की सजा देने की बात सुनाई। सुनकर वह रोने लगा और कहने लगा कि मैं रुपये दे दूगा। सजा मत करिये। हाकिम ने उस आदमी से कहा कि अरे रोता क्यो है ? तू तो कहता था कि आत्मा क्षण क्षण मे पूर्ण रूप से विनष्ट हो जाता है और बदल जाता है, तब सजा भुगतने वक्त भी न मालूम कितनी बार आत्मा नष्ट हो जायगा और बदल जायगा। दु ख किस बात का करता है ? मैं रुपये दिये देता हूँ मुझे सजा मत करिये। कह कर उसने उसी वक्त रुपये दे दिये और पिंड छुडाया। इस प्रकार वह अपने क्षणवाद के सिद्धान्त पर कायम न रह सका।

कहने का मतलब यह है कि जब भावी पर्याय का अनुभव किया जाता है, तब भूत पर्याय का अनुभव क्यो नही किया जाता ? अवश्य किया जा सकता है। यदि ऐसा माना जाय कि जीव भावी-क्रिया का तो अनुभव करता है लेकिन भूत पर्याय का अनुभव नही करता, तब सब क्रियाए व्यर्थ सिद्ध होगी। मोक्ष भी नही होगा। आत्मा के विनाश के साथ क्रिया का भी विनाश हो जायगा। इस प्रकार पुण्य-पाप कुछ न रहेगा। अत हर एक पदार्थ एकान्त विनाशी हैं, यह सिद्धान्त ठीक नही है। टीकाकार ने दो क्रियाओ का प्रयोग करके दार्शनिक मर्म समझाया है।

बीसवें अध्ययन मे कही हुई कथा महापुरुष की है। इस कथा के वक्ता महा निर्ग्रन्थ हैं और श्रोता महाराजा हैं। इन महापुरुषो की बातें हम जैनो के लिये कैसे लाभदायी होगी, इसका विचार करना चाहिए। इस कथा के श्रोता राजा श्रेणिक का परिचय करते हुए कहा है —

पभूय रयणो राजा सेणिओ मगहाहिवो।

मगधदेश का स्वामी राजा श्रेणिक बहुत रत्न वाला था। पहले रत्न का अर्थ समझ लीजिए। आप लोग हीरे, माणिक आदि को रत्न मानते हो लेकिन ये ही रत्न नहीं हैं, कुछ अन्य पदार्थ भी रत्न कहे जाते हैं। नरो मे भी रत्न होते हैं, हाथी, घोडा आदि मे भी रत्न होते हैं और स्त्रियो मे भी रत्न होते हैं। रत्न का अर्थ बहुत व्यापक है। रत्न का अर्थ श्रेष्ठ भी होता है। जो श्रेष्ठ होता है, उसेभी रत्न कहा जाता है। राजा श्रेणिक के यहा ऐसे अनेक रत्न थे।

यह बात विचार करने लायक है कि शास्त्रकार ने श्रेणिक राजा के लिए अन्य विशेषणो का प्रयोग न करके "बहुत रत्नो का स्वामी था" ऐसा क्यो कहा। प्रभूत रत्न कहने का आशय यह है कि यदि कोई अनेक रत्नो का स्वामी हो तो भी उसका जीवन बेकार है। किन्तु जिसने आत्म आत्मरत्न को पहचान लिया है, उसका जीवन सार्थक है। यदि आत्मा को न पहिचाना तो सब रत्न व्यर्थ हैं। अन्य सब रत्न तो सुलभ हैं किन्तु धर्म-रत्न दुर्लभ है। धर्म रूपी रत्न के मिलने पर ही अन्य रत्न लेखे मे गिने जा सकते हैं, अन्यथा वे व्यर्थ हैं।

आप लोगो को सब से बडी सम्पदा मनुष्य-जन्म के

रूप मे मिली हुई है । आप इसकी कीमत नही जानते । यदि आप इसकी कीमत जानते होते तो यह विचार अवश्य करते कि हम कंकड पत्थर के वदले जीवन रूपी रत्न क्यो खो रहे है? आप पूछेंगे कि हम क्या करे कि जिससे हमारा यह मनुष्य-जन्म रूप रत्न व्यर्थ न होकर सार्थक बन जाय। आपको रोज यही तो वताया जाता है कि यदि जीवन सफल करना है तो एक-एक क्षण का उपयोग करो । वृथा समय मत गमाओ । हर क्षण परमात्मा का घोष हृदय मे चलने दो । आत्मा को ईश्वर मय बनाने का प्रयत्न करना रत्न को सार्थक बनाना है ।

फिर आप पूछेंगे कि 'आत्मा को परमात्मा कैसे बनाया जाता है' तो इसका उत्तर यह है कि ससार मे पदार्थ दो प्रकार के होते हैं १ काल्पनिक २ वास्तविक । पदार्थ कुछ और है और उसके विषय मे कल्पना कुछ और करली जाय, यह अज्ञान है । अज्ञान से की हुई कल्पना ही आपको गडवड मे डाल देती है । कल्पना का पदार्थ दूसरा होता है और वास्तविक पदार्थ दूसरा । वास्तविक पदार्थ के विषय मे की गई कल्पना से उत्पन्न अज्ञान तब तक नही मिटता, जब तक कि वह वास्तविक देख न लिया जाय । दृष्टान्त के तौर पर समझिये कि किसी आदमी ने सीप मे चादी की कल्पना करली । जब वह निकट पहुचा और ध्यान पूर्वक देखने लगा तब उसका वह मिथ्या ज्ञान नष्ट हो गया और वास्तविक ज्ञान उत्पन्न हो गया । जैसे सीप मे चादी की कल्पना मिथ्या है क्योकि अन्य पदार्थ को अन्य रूप से मान लेना अर्थात् जो पदार्थ जिस रूप मे नही है, उसे उस रूप मे मान लेना ही अज्ञान है । इस प्रकार की कल्पना को

छोड़िये और अपने हृदय में परमात्मा के नाम का गुंजन होने दीजिये। यह सोचिये कि मैं नाक कान हाथ पैर आदि नहीं हूँ। ये तो पुद्गल के रूप हैं। मैं शुद्ध चेतनमय आनदघन मूर्ति हूँ। इस तरह सोचने से आपको जो मनुष्य जन्म रूप रत्न मिला हुआ है, वह सार्थक होगा।

जब आप सोते हैं तब आंख, कान आदि सब बन्द रहते हैं, फिर भी स्वप्नावस्था मे आत्मा देखता व सुनता है। स्वप्नावस्था मे इन्द्रिया सो जाती हैं और मन जागृत रहता है। इस अवस्था को ही स्वप्नावस्था कहते हैं। बाह्य इन्द्रिया सोई हुई हैं फिर भी स्वप्न मे इद्रियों का काम होता ही है। स्वप्न मे मनुष्य नाटक सीनेमा देखता है और गाने भी सुनता है। इन्द्रियों के सोते रहते स्वप्नावस्था में इन्द्रियों का काम कौन करता है, इस बात पर जरा ध्यानपूर्वक विचार कीजिये। इस बात का विवेक करिये कि आत्मा की शक्ति अनन्त है लेकिन भ्रमवश अथवा अज्ञान या मिथ्याधारना के कारण वह शरीरादि को अपना मान बैठा है। आत्मा का यह भ्रम वास्तविक पदार्थ के देख लेने से तुरन्त मिट सकता है। जैसे सीप को देखते ही चादी का भ्रम मिट जाता है। जड शरीर और चेतन आत्मा का यह बेमेल सम्बन्ध क्यो और कैसे है, इस बात पर विचार करिये। विचार करने से सद्ज्ञान प्राप्त होगा। विचार करके जो पदार्थ हमारे नहीं हैं उनको छोड़ने की कोशिश कीजिये। जब शरीर भी हमारा अपना नहीं हो सकता तो धन दौलत और कुटुम्बादि हमारे कब हो सकते हैं ? अपने पराये का वास्तविक ज्ञान ही मोक्ष की कुंजी है। आत्मा मे अनन्त शक्तियां रही हुई हैं। यह बिना आंख के देखता और बिना कान के सुनता है, जीभ के बिना

रसास्वाद करता है। स्वप्न मे न इन्द्रिया हैं और न पदार्थ, फिर भी आत्मा कल्पना के द्वारा सब कुछ अनुभव करता ही है। स्वप्न मे आत्मा गध रस स्पर्श की कल्पना करके आनद मानता है। क्रोध लोभ आदि विकारो के वश मे भी होता है। स्वप्न मे सिंह आदि हिंसक प्राणियो को देखकर भय-भीत भी होता है, दु खी भी होता है और सुखी भी। कोई मुझे काट रहा है तथा कोई मेरे शरीर पर चन्दन का लेप कर रहा है आदि भी अनुभव होता है।

स्वप्न की सब घटनाओ से आत्मा की शक्ति का पता लगता है कि विना भौतिक इन्द्रियो की सहायता के भी वह किस प्रकार सब काम चला लेता है। इसका अर्थ यह हुआ कि भौतिक पदार्थों के साथ आत्मा का कोई ताल्लुक नही है। जो सम्बन्ध है वह वास्तविक नहीं है किन्तु हमारी गलत समझ के कारण है। 'मैं इस तरह की कल्पना की चीजो मे आत्मा को न डालू किन्तु परमात्मा मे अपने आपको लगादू' यह विचार करने से मनुष्य-जीवन रूपी रत्न की सार्थकता है।

प्रत्येक काम उसके स्वरूप के अनुसार ठीक होना चाहिये। उद्देश्य कुछ और हो और काम कुछ अन्य करते हो तो साध्य सिद्ध नही हो सकता। ऐसा करने से 'वनाने गये गणेश और वन गये महेश' वाली कहावत चरितार्थ होती है। कार्य किस प्रकार ढग से करना चाहिए, यह बात एक उदाहरण से समझाता हूँ।

एक साहसी चोर साहस करके राजा के महल मे घुस गया। महल मे वह घुस तो गया, किन्तु राजा की नीद

छोड़िये और अपने हृदय मे परमात्मा के नाम का गुंजन होने दीजिये। यह सोचिये कि मैं नाक कान हाथ पैर आदि नही हूँ। ये तो पुद्गल के रूप हैं। मैं शुद्ध चेतनमय आनद घन मूर्ति हूँ। इस तरह सोचने से आपको जो मनुष्य जन्म रूप रत्न मिला हुआ है, वह सार्थक होगा।

जब आप सोते हैं तब आख, कान आदि सब बन्द रहते हैं, फिर भी स्वप्नावस्था मे आत्मा देखता व सुनता है। स्वप्नावस्था मे इन्द्रिया सो जाती हैं और मन जागृत रहता है। इस अवस्था को ही स्वप्नावस्था कहते हैं। बाह्य इन्द्रिया सोई हुई हैं फिर भी स्वप्न मे इद्रियो का काम होता ही है। स्वप्न मे मनुष्य नाटक सीनेमा देखता है और गाने भी सुनता है। इन्द्रियो के सोते रहते स्वप्नावस्था मे इन्द्रियो का काम कौन करता है, इस बात का जरा ध्यानपूर्वक विचार कीजिये। इस बात का विवेक करिये कि आत्मा की शक्ति अनन्त है लेकिन भ्रमवश अथवा अज्ञान या मिथ्याधारना के कारण वह शरीरादि को अपना मान बैठा है। आत्मा का यह भ्रम वास्तविक पदार्थ के देख लेने से तुरन्त मिट सकता है। जैसे सीप को देखते ही चादी का भ्रम मिट जाता है। जड शरीर और चेतन आत्मा का यह बेमेल सम्बन्ध क्यो और कैसे है, इस बात पर विचार करिये। विचार करने से सद्ज्ञान प्राप्त होगा। विचार करके जो पदार्थ हमारे नही हैं उनको छोडने की कोशिश कीजिये। जब शरीर भी हमारा अपना नही हो सकता तो धन दौलत और कुटुम्बादि हमारे कब हो सकते हैं ? अपने पराये का वास्तविक ज्ञान ही मोक्ष की कुंजी है। आत्मा मे अनन्त शक्तिया रही हुई हैं। यह बिना आख के देखता और बिना कान के सुनता है, जीभ के बिना

रसास्वाद करता है । स्वप्न मे न इन्द्रिया हैं और न पदार्थ, फिर भी आत्मा कल्पना के द्वारा सब कुछ अनुभव करता ही है । स्वप्न मे आत्मा गध रस स्पर्श की कल्पना करके आनद मानता है । क्रोध लोभ आदि विकारो के वश मे भी होता है । स्वप्न मे सिंह आदि हिंसक प्राणियो को देखकर भय-भीत भी होता है, दुखी भी होता है और सुखी भी । कोई मुझे काट रहा है तथा कोई मेरे शरीर पर चन्दन का लेप कर रहा है आदि भी अनुभव होता है ।

स्वप्न की सब घटनाओ से आत्मा की शक्ति का पता लगता है कि बिना भौतिक इन्द्रियो की सहायता के भी वह किस प्रकार सब काम चला लेता है। इसका अर्थ यह हुआ कि भौतिक पदार्थो के साथ आत्मा का कोई तालुक नही है । जो सम्बन्ध है वह वास्तविक नही है किन्तु हमारी गलत समझ के कारण है । 'मैं इस तरह की कल्पना की चीजो मे आत्मा को न डालू किन्तु परमात्मा मे अपने आपको लगादू' यह विचार करने से मनुष्य-जीवन रूपी रत्न की सार्थकता है ।

प्रत्येक काम उसके स्वरूप के अनुसार ठीक होना चाहिये । उद्देश्य कुछ और हो और काम कुछ अन्य करते हो तो साध्य सिद्ध नही हो सकता । ऐसा करने से 'बनाने गये गणेश और बन गये महेश' वाली कहावत चरितार्थ होती है । कार्य किस प्रकार ढग से करना चाहिए, यह बात एक उदाहरण से समझाता हूँ ।

एक साहसी चोर साहस करके राजा के महल मे घुस गया । महल मे वह घुस तो गया, किन्तु राजा की नीद

खुल जाने से वह भयभीत हो गया। चोर का साहस ही कितना होता है ? मालिक के जाग जाने पर चोर की ठहरने की हिम्मत नही रहती। राजा को जागा हुआ देखकर चोर ने सोचा कि यदि मैं पकडा जऊ गा तो मारा जाऊ गा। अत वह चोर वहा से भागा। राजा ने भागते हुए चोर को देख लिया। राजा ने सोचा–यदि मेरे महल मे से चोर बिना पकडे भाग जायगा तो मेरी बदनामी होगी। अत वह चोर के पीछे-पीछे दौडा। आगे चोर भागता जाता था और उसके पीछे राजा भी दौडता जाता था। राजा को चोर के पीछे दौडता देखकर सिपाही आदि भी उसके पीछे दौडने लगे। आगे आगे चोर, उसके पीछे राजा और राजा के पीछे सिपाही। अन्त मे चोर थक गया और विचारने लगा कि राजा उसके समीप मे ही पहुच रहा है, यदि मैं पकडा जाऊ गा तो जानकी खैरियत नही है, मगर बचने की भी कोई गु जाइश नही है। भागते हुए ही उसने आगे करने लायक बात तय करली। पास ही श्मशान आ गया था। उसने सोचा कि इस समय मुझे मुर्दा बन जाना चाहिए। मुर्दा बन जाने से राजा मेरा क्या बिगाड सकेगा ? मुर्दा बन जाने पर मुझे जिन्दा आदमी का कोई काम न करना चाहिये। मुझे पूरी तरह मुर्दा बन जाना चाहिए। स्वाग करना तो हूबहू करना चाहिए।

यह सोचकर वह धडाम से श्मशान मे जाकर गिर पडा। उसने अपनी नाडियो का ऐसा सकोच कर लिया कि मानो साक्षात् मुर्दा ही हो। राजा उसके पास आ गया और कहने लगा कि यह चोर पकड लिया गया है। इतने मे सिपाही लोग भी आ गये और कहने लगे कि महाराज, यह काम हमारा है। इस काम के लिये आपको कष्ट करने की

जरूरत न थी । चोर आपके भय मे गिर भी पडा है और मर भी गया है । राजा ने सिपाहियो से कहा कि अच्छी तरह तपास करो, कही कपट करके तो नही पडा है । सिपाही लोग चोर को खूब हिलाने लगे । वह मुर्दे के समान हिलाने से इधर उधर होने लगा ।

मनुष्य को आपत्ति भी महान् शिक्षा देती है । आपत्ति मनुष्य को उन्नत बनाती है । "रंगलाती है हिना पत्थर पै घिस जाने के बाद" मेहदी को जितना घिसा जाय उतना उसका रंग ज्यादा निखरता है । मनष्य भी जितनी आपत्तिया सहन करता है उतना अच्छा आदमी बनता है । राम का यदि वनवास करने की आपत्ति न उठानी पडती तो आज उन्हे कोई नही जानता । भगवान् महावीर यदि उपसर्ग और परिषह न सहते तो कौन उसका नाम लेता ? कौन उन्हे महावीर कहता ? सीता, मदनरेखा, अ जना, सुभद्रा आदि की शोभा आपत्ति सहन करने के कारण ही है । अत आपत्ति से घबडाना नही चाहिए किन्तु धैर्यपूर्वक उसका सामना करना चाहिए ।

राजा मे पुन सिपाहियो से कहा कि घबडाओ नही धैर्यपूर्वक परीक्षा करो कि वास्तव मे यह मर गया है या जिन्दा है । सिपाही उस मुर्दा बने हुए चोर को खूब पीटने लगे पीटते पीटते उसके खून तक निकल आया मगर उससे उफ तक नही किया । सिपाहियो ने पुन राजा से कहा कि सचमुच यह मर गया है, कपटपूवक नही पडा है । हमने इसे इतना पीटा है कि खून वह चला है, फिर भी इसने चू तक नही किया है । राजा के कहा कि दरअसल वह जिन्दा

है, मरा नही है । मुर्दे के शरीर से खून नही निकलता । उसके खून का पानी हो जाता है । इसके शरीर से खून निकल आया है, अत यह जिन्दा है । इसे धीरे से उठालो और इसके कान मे कह दो कि तेरे सब गुन्हा माफ है, उठ खडा हो । यह सुनते ही चोर उठ खडा हुआ और राजा के सामने आकर हाजिर हो गया ।

राजा सोचने लगा कि यह चोर मेरे भय से मुर्दा बन गया था । मनुष्य के भय से भी मनुष्य इस प्रकार मुर्दा बन सकता है तो मुझे मृत्यु के भय से क्या करना चाहिए ? राजा ने चोर से पूछा कि तेरे पर इतनी मार पडने पर भी तू क्यो नही बोला ? चोर ने उत्तर दिया कि महाराज ! जब मैंने मुर्दे का स्वांग किया था तब कैसे बोल सकता था ? मुर्दा बना और मार पडने पर रोने लगू, यह कैसे हो सकता है ? राजा ने चोर से कहा कि मालूम होता है तुम बडे भक्त हो । चोर ने कहा-मैं भक्ति कुछ नही जानता, मैं तो आपके भय से अचेत पडा था । राजा ने पुन कहा कि हे चोर ! जैसे मेरे भय से तू मुर्दा अर्थात् शरीरादि के प्रति अनासक्त बना, वैसे ही यदि इस ससार के दु खो के भय से बन जाय तो तेरा कल्याण हो जाय । चोर कहने लगा—मैं ज्ञान की इन बातो को नही समझता ।

दृष्टान्त कहने का साराश यह है कि चोर ने मुर्दे का स्वाग भरा था और उसे पूरा निभाया भी था । यदि वह मार खाते वक्त बोल जाता तो क्या उसकी रक्षा हो सकती थी ? कभी नही । उसने मार खाकर भी अपने विरुद रक्षण किया था । चोर के समान आप भी यदि अपने विरुद की

रत्ना करो तो भगवान् दूर नही है । ऊपर से यदि कहो कि हमारे हृदय मे भगवान् बसा है और भीतर मे काम क्रोध आदि विकारो को स्थान दे रखो तो क्या आपका स्वाग पूरा गिना जायगा और आपके मन मे भगवान् वास कर सकते है ? चोर ने अपना विरुद निभाया तो क्या आप नही निभा सकते ? सासारिक प्रपचो और झगडो मे पड कर अपना विरुद मत खोओ । भक्त कबीरदास ने कहा है कि—

तू तो राम सुमर जग लडवा दे ॥
कोरा कागज काली स्याही, लिखत पढत वाको पढवा दे ।
हाथी चलत है अपनी गत सो, कुतर भुक्त वाको भुक्वा दे ।
कहत कबीर सुनो भाई साधू, नरक पचत वाको पचवा दे ।

आप कहेगे कि आज राम कहा हैं ? राम तो दश-रथ के पुत्र थे जिनको हुए हजारो वर्ष बीत चुके है । मैं कहता हूँ राम आप सब के हृदय मे बसा हुआ है ।

रमन्ति योगिनो यस्मिन् स राम

जिसमे योगी लोग रमण करने है, वह राम है । योगी लोग आत्मा मे ही रमण करते है, अत आपकी आत्ता ही राम है । ऐसी आत्मा का सदा स्मरण करिये । किन्तु स्मरण किस प्रकार करना चाहिए, इसका खास रयाल रखिये । यदि चोर मार खाते वक्त उफ भी कर देता तो उसका स्वाग पूरा न गिना जाता । इसी प्रकार आप परमात्मा का नाम लेकर भी यदि ससार के झगडो मे पड गये तो क्या भक्त बनने का आपका स्वाग पूरा गिना जायगा ? कभी नही । यह सोचना चाहिए कि मेरा आत्मा हाथी के समान है ।

ससार के झगडे कुत्तो के समान हैं। यदि इस आत्मा रूपी हाथी के पीछे झगडे-टण्टे रूप कुत्ते भूसते हो तो इससे आत्मा को क्या। कोई कोरे कागज पर स्याही से कुछ भी लिखता हो तो वह लिखता रहे इससे आत्मा को क्या हानि है इस प्रकार सोचकर परमात्मा की शरण जाने से आपका सब मनोरथ सिद्ध होगा। चोर द्वारा स्वाग निभाने पर राजा का हृदय परिवर्तित हो गया तो कोई कारण नही है कि आपके द्वारा ईश्वर भक्त का स्वाग पूरी तरह निभाने पर आपके लिए लोगो का हृदय न बदले। आप लोग, पक्की परीक्षा हो जाने के बाद भक्त के लिए सब कुछ करने के लिए तैयार रहते हैं। भक्ति मे कपट नही होना चाहिए। कपट या पर्दा कभी न कभी फाश हुए विना नही रहता।

आप लोग घरबार वाले हैं अत व्याख्या सुनकर यहा से घर पहुचते ही ससार की अनेक उपाधिया आपको आ घेरेगी। उपाधियो के वक्त भी यदि आप लोग मेरा यह उपदेश ध्यान मे रक्खोगे तो आपका वास्तविक कल्याण होगा और यहा बैठ कर व्याख्यान श्रवण का काय सफल होगा। व्याख्यान हाल एक शिक्षालय है जहा अनेक विपयो की शिक्षा दी जाती है। शिक्षालय से शिक्षा ग्रहण करके उसका उपयोग जीवन व्यवहार मे किया जाता है। इसी प्रकार यहा से ग्रहण की हुई शिक्षाओ का पालन यदि जीवन मे न किया गया तो शिक्षा लेना व्यर्थ हो जायगा। जो पालन करेगा उसका यह भाव और पर भव दोनो सुधरेगा।

अग्नि शीतल शील से रे, विषधर त्यागे विप।
शशक सिह अज गज हो जावे, शीतल होवे विपरे ॥ धन ॥

सत्य शील को सदा पालते, श्रावक सुर शृङ्गार ।
धन्य-धन्य जो गृहस्थवास मे, पाले दुधर धार रे। धन ।

सुदर्शन का व्याख्यान तो उसके शरीर का है और न वैभव का। किन्तु वह शील का पालन करके मुक्तिपुरी मे पहुचा है अत उसको नमस्कार करते हैं और उसका व्याख्यान भी करते है।

आज सुदर्शन मौजूद नही है अर्थात् उसका वह भौतिक कलेवर जिसके द्वारा उसने महान् शीलव्रत का पालन किया था हमारे समक्ष उपस्थित नही है तथापि उसका यश शरीर, चरित्र और मोक्ष तीनो मौजूद है। जिस शील का आचरण करने से आज उसका व्याख्यान किया जा रहा है, उस शील के प्रताप से धधकती हुई आग भी शीतल हो जाती है। दृष्टान्त के लिए सीता की अग्नि-परीक्षा प्रसिद्ध ही है। कदाचित् सीता का दृष्टान्त पुराना बताकर कोई भाई इस बात पर एतबार न करे कि शील से अग्नि कैसे शान्त हो सकती है तो उनके लिए ऐतिहासिक ऐसे उदाहरण मौजूद हैं कि धर्म की परीक्षा के लिए उनको आग मे झोंका गया लेकिन अग्नि उन्हे न जला सकी। केवल भारत मे ही ऐसे उदाहरण नही हैं किन्तु युरोप मे भी ऐसे उदाहरण हैं। अग्नि कहती है कि मैं कुशील-व्यक्ति को जला सकती हूँ, सुशील या सदाचारी को जलाने की मुझ मे ताकत नही है। उस सुशील आत्मा की महान् आध्यात्मिक शान्ति के सामने मेरी गरमी नष्ट हो जाती है। जब द्रव्यशील की यह शक्ति है तब भावशील की क्या बात करना ?

मेरे कथन को सुनकर कि शील पालने से अग्नि शीतल

हो जाती है कोई भाई एक-आध दिन शील का पालन करके यह जाच न करे कि देखू मेरे हाथ को अग्नि जलाती है या नही ? और यह सोच कर कोई घर जाकर चूल्हे की अग्नि मे अपना हाथ मत डाल देना। यदि कोई ऐसा करेगा तो वह मूर्ख गिना जायगा। जिस शक्ति की बात कही जा रही है, माप भी उसी के अनुसार होना चाहिए। कहा जाता है और सत्य भी है कि हवा मे भी वजन होता है। कोई आदमी एक लिफाफे मे भर कर उसे तोलने लगे तो वह न तुलेगी। लिफाफे मे हवा न तुलने से कोई आदमी यह निष्कर्ष निकाले कि हवा मे वजन होने की बात बिलकुल गलत है तो यह उसकी भूल है। हवा तोली जा सकती है मगर उसे तोलने के साधन जुदा होते है। हवा बहुत सूक्ष्म है, अत उसे तोलने के साधन भी सूक्ष्म होगे। किसी के ऐसा कह देने से क्या हवा के विषय मे किसी प्रकार की शका की जा सकती है?

शील की शक्ति से अग्नि शीतल हो जाती है। मगर कब और किस हद तक शील पालने से होती है इसका अध्ययन करना चाहिए। केवल शील की बाधा लेली और लगे करने परीक्षा कि हमारा हाथ अग्नि मे जलता है या नही तो पछताना पडेगा। हाथ जला बैठोगे। शील की प्रशसा करते हुए शास्त्र मे कहा है —

> देव दाणव गधव्वा जक्ख रक्खस किन्नरा।
> बभचारी नमसन्ति दुक्कर जे करति त ॥

देव, दानव, गधर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर सब दुष्कर ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले को नमन करते हैं। इस प्रकार

ब्रह्मचर्य की शक्ति बताई गई है और कहा गया है कि ब्रह्मचारी के लिए इस जगत् मे कोई गुण या शक्ति अप्राप्य नही है, उसके लिए सब कुछ सुलभ है । किन्तु जिस प्रकार लोहे के बाट से अनाज का वजन किया जाता है, उसी प्रकार स्थूल साधनो से उसका नाप नही हो सकता । इस तरह नाप करने से आपके हाथ कुछ न लगेगा । यदि महापुरुषो की बातो पर विश्वास लाकर आप भी इस मार्ग मे आगे बढते जाओगे तो अवश्य एक दिन ऐसी शक्ति भी प्राप्त हो जायगी कि अग्नि भी शीतल हो जाय ।

शील की शक्ति से साँप निर्विष हो जाता है । कहावत है कि 'सांप किसका सगा है' वह समय पर अपनी शक्ति सब पर आजमाता है किन्तु शीलवन्त का साँप भी सगा है, यह बात अनेक उदाहरणो से सिद्ध है। ऐसे ऐतिहासिक उदाहरण हैं कि सापने काटने के बजाय सहायता की है । नूरजहा बेगम मुहम्मद नाम के सिपाही की लडकी थी । एक बार भूखो मरने के कारण मुहम्मद और उसकी स्त्री अफगानिस्तान से भारत आ रहे थे। स्त्री गर्भवती थी । मार्ग मे उसको लडकी हो गई । मुहम्मद ने कहा कि इस समय अपने को अपना भार उठाना भी कठिन है, वैसी हालत मे इस छोकरी को कैसे उठायेंगे ? अत यही पर छोड दो, स्त्री ने पति की बात मान कर एक वृक्ष के नीचे उस नादान बच्ची को वही पर छोड दिया। कुछ आगे चलने पर स्त्री घबडाई और चलने मे असमर्थ हो गई । आप जानते हैं उसका मातृहृदय था । वह लडकी को इस प्रकार निराधार छोड देने की बात को सहन न कर सकी । आखीर मुहम्मद वापस उस वृक्ष के नीचे उस बच्ची को लेने के लिये गया । वह

वहा क्या देखता है कि एक साप उस बच्ची पर फन करके धूप से उसकी रक्षा कर रहा है ।

सांप भी तब काटता है, जब किसी मे शैतानियत होती है । यदि शैतानियत न हो तो सांप भी नही काटता। सेंधिया के पूर्वज महादजी के लिए कहा जाता है कि वे पेशवा के यहा जूतो की रक्षा करने के लिये नौकर थे । एक बार पेशवा किसी महफिल मे गये । महादजी उनके जूते छाती पर रखकर सो गय । जब पेशवा वापस आये तब देखा कि महादजी पर एक सांप छाया किए हुए है । उन्होने सोचा साक्षात् काल रूप सांप भी जिसकी रक्षा कर रहा है, उस कि आदमी से मैं ऐसा तुच्छ काम ले रहा हूं । ऐसा सोचकर पेशवा ने महादेजी को बढाना शुरू किया । आज महादजी के वशज करोडो की जागीरे भोग रहे हैं । उनके पैसे और कागज आदि पर सांप का चित्र आज भी रहता है ।

कहने का भावार्थ यह है कि जब शील पूर्ण रूप से पाला जाय तब सांप भी नही काटता । लेकिन कोई इस कथन पर सांप के मुह मे हाथ न डाले अथवा सांप को पकड कर बच्चे पर छाया न करवाये । कोई ऐसा करे तो यह उसकी भूल है । यदि हममें शील का तेज होगा तो प्रकृति अपने आप हमारी सहायता करेगी ।

शील की शक्ति से सिंह भी खरगोश के समान गरीब बन जाते हैं । जो व्यक्ति सुदर्शन के समान किसी भी समय और किसी भी परिस्थिति मे अपने शील का भग नही होने देता किन्तु सदा शील की रक्षा करता है, उसी का शील है सच्चा शील है ।

आप मे शील के प्रति सच्ची श्रद्धा हो तो फिर कुछ भी कहने की आवश्यकता नही रह जाती । आज सच्चे कामो के प्रति लोगो की श्रद्धा हिल चुकी है अत सब कुछ कहना पडता है ।

जिस व्यक्ति मे पूर्ण शील है, वह किसी प्रकार का चमत्कार दिखाना पसन्द नही करता । आप कहेगे कि चमत्कार देखे विना हमे शील धर्म पर विश्वास कैसे होगा ? यदि साधु लोग चमत्कार दिखाने लगे तो वहुत लोग उनकी तरफ आकर्षित होगे । यह बात ठीक है कि चमत्कार को नमस्कार मगर सच्चे साधुओ को न तो नमस्कार की परवाह होती है और न वे कभी चमत्कार दिखाने की झझट मे पडते हैं । वे तो अपना–आत्म लाभ करने मे तल्लीन रहते हैं । इस वात को एक छोटे से दृष्टान्त से समझाता हूँ ।

एक आदमी ने जलतरण विद्या सीखी । वह सीख कर लोगो को अपना चमत्कार दिखाने लगा कि देखो मैं जल मे किस प्रकार टिक सकता हूँ और तैर सकता हूँ । एक योगी वहाँ आ पहुचा और कहने लगा कि अरे क्या अभिमान मे फूले जा रहे हो ? तीन पैसे की विद्या पर इतना घमण्ड मत करो । उस आदमी ने कहा–योगीराज ! मैंने साठ वर्ष तक परिश्रम करके यह जलतरण विद्या सिखी है और आप इसे तीन पैसे की वता रहे हैं ? हा, यह तीन पैसे की विद्या है कारण तीन पैसे मे नदी पार की जा सकती है । नौका वाला तीन पैसे लेकर उस पार पहुचा देता है । साठ साल के परिश्रम से यदि तूने यही सिखा है तो वस्तुत समय वर्वाद किया है । अगर साठ साल विगाड कर इस तरह का खेल ही दिखाया तो जीवन नष्ट ही किया है । साठ

साल मे केवल नौका ही वन सके, आत्मकल्याण न साध सके ।

इसी प्रकार यदि कोई घरबार छोड कर साधु बने और शील धर्म का पालन करे, फिर भी आत्म-कल्याण करने के बजाय चमत्कार दिखाने मे लग जाय तो उसका साधुत्व नष्ट हो जायगा । अत सच्चे साधु शील रूपी जल मे निमग्न रहते हैं । वे चमत्कार नही दिखाते । साधु तो घर-स्त्री आदि छोडकर शील का पालन करने के लिए ही कटिबद्ध हुए है अत पालते ही है । मगर सुदर्शन ने गृहस्थावस्था मे होते हुए भी शील का पालन किया है, अत वे विशेष धन्यवाद के पात्र हैं ।

शील किस प्रकार पाला जाता हैं, इसके शास्त्र मे अनेक उदाहरण मौजूद हैं । आप उनको ध्यान मे लीजिये। केवल यह मान वैठिये कि स्त्रीप्रसग न करना ही शील है, वास्तव मे जब तक वीर्य की रक्षा न की जाय तब तक तेज नही आ सकता । अत पर-स्त्री या घर-स्त्री सब से बच कर नष्ट होने वाले वीर्य की रक्षा कीजिये ।

एक आदमी की अगूठी मे रत्न जडा हुआ था । वह उसे निकाल कर पानी मे फेंकना चाहता था । दूसरा आदमी अपनी अगूठी की रक्षा किया करता था । इन दोनो मे से आप किसे होशियार कहेंगे ? रत्न की रक्षा करने वाले को ही होशियार कहेंगे । जिस वीर्य से आपका यह शरीर बना हुआ है, उस वीय रूपी रत्न को इधर-उधर नष्ट करना कितनी मूर्खता है ? यदि आप उसकी रक्षा करेंगे तो आप मे तेजस्विता आ जायगी । आज लोग वीर्यहीन होते जा रहे

हैं । यही कारण है कि डॉक्टरो की शरण लेनी पडती है । पहले के लोग वीर्यवान् होते थे, अत डॉक्टरी सहायता की उन्हे बहुत कम आवश्यकता पडती थी ।

आज सतति-निरोध के नाम पर स्त्री का गर्भाशय ऑपरेशन कराके निकलवा डालने का भी रिवाज चल पडा हैं । स्त्री का गर्भाशय निकलवा देने पर चाहे जितना विषय सेवन किया जाय, कोई हर्ज नही, यह मान्यता आज कल बढती जा रही है । लेकिन यह पद्धति अपनाने से आपके शील की तथा आपकी कोई कीमत न रहेगी । वीर्य-रक्षा करने से ही मनुष्य की कीमत है, वीर्य को पचा जाने मे ही बुद्धिमत्ता है ।

आधुनिक डॉक्टरो का मत है कि जवान आदमी शरीर मे वीर्य को नही पचा सकता । ऐसा करने से दूसरी हानि होने की सम्भावना रहती है । इस मान्यता के विपरीत हमारे ऋषि-मुनियो का अनुभव कुछ जुदा है । शास्त्र मे ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये नववाड बतलाई हुई है, जिनकी सहायता से शरीर मे वीर्य पचाया जा सकता है ।

अमेरिकन तत्ववेत्ता डॉक्टर थौर एक बार अपने शिष्य के साथ जगल मे गया था । शिष्य ने उनसे पूछा कि यदि कोई आदमी अपने वीर्य को शरीर मे न पचा सके तो उसे क्या करना चाहिए ? थौर ने उत्तर दिया कि ऐसे व्यक्ति के लिये जीवन भर मे एक बार स्त्री प्रसग करना अनुचित नही है । ऐसा करना वीर का काम है । जिस प्रकार सिंह जीवन मे एक बार सिंहनी से मिलता है । वैसे ही जो जीवन मे एक बार स्त्री सग करता है, वह वीर पुरुष है । शिष्य ने पूछा कि यदि ऐसा

करने पर भी मन न रुके तो क्या करना चाहिये ? थौर ने उत्तर दिया कि साल मे एक वार स्त्री-प्रसग करना चाहिए। फिर शिष्य ने पूछा यदि इस पर भी मन न रुके तो क्या करना ? गुरु ने कहा कि मास मे एक वार स्त्री से मिलना चाहिये। यदि इस पर भी मन न रुके तो क्या करना चाहिये, पूछने पर थौर ने उत्तर दिया कि फिर मर जाना चाहिये।

पवनजय की हनुमानजी एक मात्र सन्तान थे। अजना पर कोप करके पवनजी बारह वर्ष तक अगल रहे अलग रहकर उन्होने दूसरा विवाह नही किया था, किन्तु ब्रह्मचर्य का पालन करते रहे। बारह वर्ष बाद अजना से मिले थे, अत हनुमान जैसे वीर पुत्र उत्पन्न हुआ था। आज लोगों को सशक्त और तेजस्वी पुत्र तो चाहिये, मगर यह विचार नही करते कि हम वीर्य रक्षा कितनी करते हैं ? डॉक्टर थौर ने कहा है कि मास में एक वार स्त्री-प्रसग करने पर भी यदि मन न रुकता हो तो उस आदमी को मर ही जाना चाहिये क्योकि जो आदमी मास मे एक वार से अधिक वीर्य-नाश करता है, उसके लिये मरने के सिवाय और क्या मार्ग है ?

आज समाज की क्या दशा है ? आठम चौदस को भी शील पालने की शिक्षा देनी पडती है। आठम चौदस की प्रतिज्ञा लेकर लोग ऐसे भाव दिखलाते हैं, मानो हम साधुओ पर कोई उपकार करते हैं। सच्चा श्रावक स्वस्त्री

का आगार होने पर भी अपनी स्त्री के साथ भी सन्तोष से काम लेगा। जहा तक होगा बचने की कोशिश करेगा। सब सुधारो का मूल शील है। आप यदि जीवन मे शील को स्थान देंगे तो कल्याण है। सुदर्शन किसका लडका था, और उसका जन्म किस प्रकार हुआ, यह बात अवसर होने पर आगे कही जायगी।

राजकोट
८—७—३६ का
व्याख्यान

६ : स्वतन्त्रता

"सुज्ञानी जीवा भजले रे जिन इकवीसमा । प्रा० "

यह इकवीसवें तीर्थंकर भगवान् नेमीनाथ की प्रार्थना है । परमात्मा की कैसी प्रार्थना करनी चाहिए, इस विषय पर बहुत विचार किया जा सकता है किन्तु इस समय थोडा सा प्रकाश डालता हूँ । इस प्रार्थना मे कहा गया है कि–

तू सो प्रभु, प्रभु सो तू है, द्वैत कल्पना मेटो ।

यह एक महावाक्य है । इसी प्रकार दूसरो ने भी कहा है–

देवो भूत्वा देव यजेत्

इन पदो का भावार्थ यह है कि प्रभु की प्रार्थना गुलाम बनकर मत करो किन्तु परमात्म–स्वरूप बनकर करो ।

यदि कोई यह कहे कि जब हम खुद परमात्म–स्वरूप हैं तब प्रार्थना करने की क्या आवश्यकता रह जाती है ? प्रार्थना तो इसलिए की जाती है कि हम अपूर्ण हैं और परमात्मा सम्पूर्ण है । हम आत्मा हैं, वह परम आत्मा है ।

अपूर्ण से सम्पूर्ण और आत्मा से परमात्मा बनने के लिए ही तो प्रार्थना की जाती है। परमात्मा रूप बनकर ही कैसे प्रार्थना कर सकते हैं ? ऊपर-ऊपर देखने से तो यह शका ठीक मालूम देती है किन्तु आन्तरिक विचार करने से ऐसी शका कभी नही उठ सकती। कुम्भकार मिट्टी से घडा बनाता है। यदि मिट्टी मे घडा बनने की योग्यता ही न हो तो कुम्भकार क्यो प्रयत्न करने लगा ? सोनी सोने का जेवर बनाता है। यदि सोने मे जेवर रूप बनने की शक्ति ही न हो तो सोनी क्या कर सकता है ? आप जो कपडे पहिनते हैं वे सूत के धागो से बुने हुए हैं। यदि सूत मे कपडा रूप से परिणत होने की योग्यता न हो तो आपके शरीर की शोभा कैसे हो सकती है ? यही बात परमात्मा स्वरूप बनकर परमात्मा की प्रार्थना करने के विषय मे भी समझिये। जिस वस्तु मे जैसी शक्ति होती है, वही वस्तु वैसी बन सकती है। यदि आप मे परमात्मा बनने की योग्यता अथवा शक्ति विद्यमान न हो तो आपको परमात्मा की प्रार्थना करने की बात ही क्यो कही जाय ? बीजरूप से आप-हम सब मे परमात्मा विद्यमान है। प्रार्थना रूप जल सिंचन करने से वह बीज फल-द्रुम हो सकता है। बीज ही न हो तो जल और मिट्टी क्या कर सकते हैं ? अत गुलामवृत्ति-दासवृत्ति को छोडकर अपने लिए यह मानते हुए प्रार्थना करिये कि मैं खुद परमात्मा हूँ। इस वक्त कर्मपट रूप आवरण के कारण मेरा ईश्वरत्व ढका हुआ है। हे प्रभु ! मैं आप से इसलिए प्रार्थना करता हूँ कि आपकी सहायता से मेरे आत्म देव पर लगा हुआ कर्म रूप मैल दूर हो जाय और मैं भी आप जैसा ही बन जाऊ। मैं गुलाम नही हूँ। मैं स्वतन्त्र हूँ। ऐसी भावना

रखने से गुलामवृत्ति छूट जाती है।

राष्ट्रीय और आर्थिक स्वतन्त्रता भी स्वतन्त्र भावना रखने से ही प्राप्त हो सकती है। सच्चा यकीन रखे बिना राष्ट्रीय स्वतन्त्रता भी दुर्लभ है। जब तक गुलामी की भावना हृदय मे से नही निकल जाती तब तक स्वतन्त्रता की बातें व्यर्थ हैं। सब लोग स्वतन्त्रता चाहते हैं और उसकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न भी करते हैं किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के अनेक मार्ग हैं। सबका लक्ष्य भी एक मात्र स्वतन्त्रता-प्राप्ति है किन्तु रास्ते जुदे-जुदे बताये जाते हैं। कोई कहता है-स्त्रियो को सुशिक्षित बनाये बिना भारत आजाद नहीं हो सकता। कोई कहता है, बिना सात करोड़ अछूत कहे जाने वाले लोगो का उद्धार किये आजादी दुर्लभ है। कोई कहता है, बिना ग्रामो और ग्रामोद्योग की उन्नति के स्वतन्त्रता की बातें बेकार हैं। कोई खादी को स्वतन्त्रता की चाबी बताता है। मतलब यह कि लक्ष्य एक होने पर भी मार्ग जुदा-जुदा बताये जाते हैं।

यद्यपि ये सब मार्ग स्वतन्त्रता की प्राप्ति मे उपयोगी हैं, किसी न किसी रूप से सब मार्ग काम के हैं। किन्तु आत्मा की गुलामी छूटे बिना सम्पूर्ण स्वतन्त्रता नही मिल सकती। जब तक आत्मा में गुलामी के भाव भरे हुए रहेंगे तब तक ये जुदे-जुदे उपाय भी बेकार होगे। ये सब उपाय अपूर्ण हैं। पूर्ण उपाय तो गुलामवृत्ति का त्याग ही है। आत्मिक स्वतन्त्रता के बिना राजनैतिक स्वतन्त्रता भी इतनी उपयोगी न होगी। जब तक मनुष्य विकारो का गुलाम बना रहेगा, तब तक वास्तविक शान्ति प्राप्त कर ही नहीं सकता।

मान लीजिये कि एक आदमी खादी पहिनता है मगर दारू और परस्त्री गमन के व्यसन मे फसा हुआ है तो क्या केवल खादी पहनने मात्र से स्वतन्त्रता मिल जायगी ? मानसिक गुलामी के रहते अन्य स्वतन्त्रता किस काम की ? उस स्वतन्त्रता से तो उल्टा मनुष्य स्वच्छन्द बन जायगा । अत कहा गया है कि आत्मा को स्वतन्त्र बनाओ । उसमे रहे हुए दुर्गुणो को निकालने का यत्न करो । यदि आत्मा स्वतन्त्र होगा तो वह मन और इन्द्रियो का गुलाम न रहेगा, किसी भी दुर्व्यसन मे न फसेगा ।

आज मेरा मस्तक ठीक नही है । गुजराती भाषा बोलते मे दिक्कत होगी अत हिन्दी भाषा मे ही बोल रहा हूँ । मुझे उम्मीद है कि हिन्दी भाषा आप सब की समझ मे आ जायगी । दूसरी बात, जब कि मैं अपनी मातृ भाषा हिन्दी को छोडकर आपकी भाषा अपनाता हूँ तब क्या आप मेरी भाषा को न अपनायेगे ? हिन्दी राष्ट्र भाषा है । देश के बीस करोड आदमी इसका व्यवहार करते हैं । मुझे विश्वास है कि आपको इस भाषा से प्रेम है ।

अनेक लोगो ने आत्मा को सदा गुलाम बनाये रखने का ही सिद्धान्त मान रखा है । वे कहते हैं—जीव, जीव ही है और सदा जीव ही रहेगा । शिव, शिव ही है और सदा शिव ही रहेगा । जीव, शिव नही हो सकता । जीव, शिव का दास ही रहेगा । यदि बादशाह किसी नौकर पर प्रसन्न हो जाय तो वह उसे उच्चपद पर पहुचा देगा । सबसे उच्च पद मत्री का है । मत्री बना देगा किंतु बादशाहत तो नही देगा । इसी प्रकार ईश्वर भी हमारे कामो

से प्रसन्न होकर हमे सुखी बना देगा, किन्तु ईश्वरत्व तो नही दे देगा । बादशाह और नौकर के दृष्टान्त से आत्मा और परमात्मा मे जो साम्य बताया गया है, वह आध्यत्मिक माग मे लागू नही हो सकता । बादशाह और नौकर का दृष्टान्त स्थूल भौतिक है । जब कि आत्मा और परमात्मा का सबध सूक्ष्म है, आध्यात्मिक है । इस प्रकार की कल्पना आध्यात्मिक मार्ग मे कोई मूल्य नही रखती ।

अनलहक या खुदा शब्द का अभिप्राय यह है कि मैं ईश्वर हूँ । खुदा का अर्थ है जो खुद से बना हो । तो क्या आत्मा किसी का बनाया हुआ है ? क्या आत्मा बनावटी है ? जैसे कुम्भकार मिट्टी से घडा बनाता है, उसी प्रकार हमको भी किसी ने बनाया है ? जब कोई हमे बना सकता है तो कोई हमारा विनाश भी कर सकता है । जैसे कि कुभकार घडा बना भी सकता है और फोड भी सकता है । ऊपर के सब प्रश्न निरर्थक हैं । वास्तव मे आत्मा वैसा नहीं है । यदि आत्मा बनावटी हो तो मुक्ति या स्वतन्त्रता के लिये किये हुए हमारे प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध होगे । हम क्या हैं ? और कैसे हैं ? सो इस प्रार्थना मे बताया ही है —

तू सो प्रभु, प्रभु सो तू है, द्वत कल्पना मेटो ।
शुद्ध चैतन्य आनन्द विनयचन्द परमारथ पद भेंटो ।। सुज्ञानी ।।

कायरता और दुविधा के कपडे फेंककर आत्म-स्वरूप को पहिचानिये । आपका आत्मा ईश्वर के आत्मा से छोटा नही है । आप तो इतना विकास कर चुके हो, आपकी आत्मा ईश्वर के बराबर है, इस मे क्या सन्देह है ? खसखस जितने शरीर मे निगोद के अनन्त जीव रहे हुए हैं,

उनका आत्मा भी ईश्वर के आत्मा के समान है ।

ज्ञानियो के कथनानुसार निगोद के जीव भी ईश्वर रूप हैं । आत्मा की दृष्टि से ईश्वर और इन जीवो मे कोई भेद नही है । यह वात समझने के लिए यदि किसी अनु-भवी सद्गुरु से ठाणाग सूत्र सुना जाय तो शका का कोई स्थान न रहे । श्री ठाणाग सूत्र के प्रथम ठाणे मे कहा है कि — एगे आया

अर्थात् आत्मा एक है–समान है । सिद्ध और ससारी का कोई भेद न रखकर कहा है कि आत्मा एक है । सव का आत्मा एक समान है । जैनो के 'एगे आया' एकात्मवाद और वेदान्तियो के अद्वैतवाद मे नयदृष्टि से किसी प्रकार का भेद नही है । एकान्त दृष्टि पकडने पर भेद पड जाता है । शुद्ध सग्रह नय की दृष्टि से एक आत्मा है, चाहे वह सिद्ध हो चाहे ससारी । जैसे मिट्टी मिला हुआ सुवर्ण और मिट्टी से अलग सुवर्ण एक वस्तु है मगर व्यवहार मे उन मे भेद गिना जाता है । व्यवहार मे एक ही डली की शुद्ध सुवर्ण की रकमो मे भी भेद गिना जाता है, जव कि सराफ को दृष्टि मे कोई भेद नही होता है । यदि मनुष्य हिम्मत न हारे तो मिट्टी मे मिले हुए सोने को शुद्ध सोना वना सकता है । ताप आदि के द्वारा मैल दूर किया ही जाता है । किन्तु जव तक मिट्टी और सोना आपस मे मिला हुआ है, तव तक व्यवहार मे अन्तर गिना जायगा । मूल्य मे भी वडा अन्तर रहता है । मिट्टी मे रहे हुए सोने को यदि सोना न माना जाय तो कही जेव मे से तो सोना नही टपक पडता । मिट्टी मे सोना है और प्रयत्न विशेष के द्वारा वह अलग

किया जा सकता है । जिन लोगो ने सोने की खानें देखी हैं, वे इस बात को अच्छी तरह समझ सकते हैं।

जिस प्रकार शुद्ध और अशुद्ध सोने मे अन्तर है और वह अतर व्यवहार की दृष्टि से है, उसी प्रकार आत्मा और परमात्मा मे जो भेद है, वह व्यवहारनय से है । शुद्ध सग्रह नय की दृष्टि से उनमे कोई भेद नही है। जैसे मिट्टी में मिला हुआ सोना भी सोना ही है, वैसे ही कर्ममल से आवृत आत्मा भी ईश्वर ही है । जिस प्रकार सुवर्ण निकाले जाने वाले मिट्टी के डले को देखकर स्थूल समझवाला व्यक्ति उस मे सोना नही देख सकता है किन्तु इस विषय का विशेषज्ञ व्यक्ति उस डले मे स्पष्ट रूप से सोना देखता है । उसी प्रकार माया के पर्दे मे फसे हुए और ससार के व्यवहारो मे मशगूल व्यक्ति के आत्मा मे भी ज्ञानी-जन परमात्मपन देख रहे हैं । मतलब यह कि आत्मा और परमात्मा की एक ही जाति है । भेद तो औपाधिक है । वास्तविक भेद कुछ नही है अत विद्वानो ने अनुभव करके 'अनल हक' या 'एगे आया' कहा है ।

आज के जमाने मे 'हमारा आत्मा ईश्वर है' यह मान कर चलने मे बडी कठिनाई हो रही है । यह कठिनाई मान्यता की ही कठिनाई है । वास्तव मे आत्मा से परमात्मा बनना बडा सरल काम है । यदि महात्मा लोगो की सत्सगति रूप सहायता प्राप्त हो जाय तो अपने को ईश्वर मानकर आगे बढने मे कोई कठिनाई नही है । दीपक से दीपक जलता है। यह बात एक उदाहरण कहकर समझाना चाहता हूँ।

एक साहूकार का लडका बुरी सगत मे फस गया ।

उसके मुनीम गुमाश्ता आदि उसे बहुत समझाते मगर वह किसी की न मानता था। उसने उन समझाने वाले मुनीम गुमाश्तो आदि को भी नौकरी से पृथक् कर दिया। बुरी सोहबत मे पडकर उसने अपनी सारी सम्पत्ति भी खो दी। हितकारी लोग उसे बुरे लगते थे और दुर्जन लोग उसे भले मालूम पडते थे। दुर्जनो की सलाह मानकर वह दरिद्र बन गया। स्वार्थी लोग तब तक पास फिरा करते हैं, जब तक उनका मतलब सिद्ध होता है। स्वार्थ सिद्ध हो जाने पर अथवा भविष्य मे स्वार्थ सिद्धि की आशा न रहने पर वे निकट नही आते। जैसे पक्षी वृक्ष पर तब तक रहते हैं, जब तक कि उस पर फल होते हैं। फलो के नष्ट हो जाने पर पक्षी अन्यत्र चले जाते हैं। स्वार्थी लोगो का भी यही हाल है। उस साहूकार के लडके को उसके स्वार्थी मित्रो ने छोड दिया। अब उसके पास खाने तक के लिए पैसे न रहे। लडका सोचने लगा कि अब क्या करना चाहिए ? अन्य काम तो रोके भी जा सकते हैं मगर इस पेट पापी को तो कुछ न कुछ दिए बिना काम न चलेगा। लडका सदा मौज मजे मे ही रहा था अत कोई हुन्नर–उद्योग भी न जानता था। वह भूखो मरने लगा। अन्त मे भीख माँगना प्रारम्भ कर दिया।

भिखारी की स्थिति कितनी दयनीय होती है, यह बात किसी से छिपी नही है। कभी भिखारी को अच्छा टुकडा भी मिल जाता है मगर उसकी आत्मा कितनी पतित हो जाती है। लडके की स्थिति खराब हो गई। वह दर–दर का भिखारी हो गया, अपना आपा भूल कर हाय रे हाय रे करने लगा। उसके पास कोई दूसरा बर्तन न था अत ठीकरे

मे ही मागने लगा ।

दैवयोग से भीख मागते-मागते एक दिन वह अपने पिता के जमाने के हितैषी मुनीम के घर जा निकला और खाने के लिये रोटी मागने लगा। लडका मुनीम को न पहिचानता था मगर मुनीम ने लडके को पहिचान लिया मुनीम ने मन मे विचार किया कि यह मेरे महान् उपकारी सेठ का लडका है मगर आज इसकी क्या दशा है । सेठ का मुझ पर मेरे पिता के समान उपकार है । मुनीम यह सोच रहा था मगर वह लडका 'भूख लगी है, कुछ भोजन हो तो देओ' की रट लगा रहा था । मुनीम यदि चाहता तो दो रोटी देकर उसे रवाना कर देता मगर उसके मन मे कुछ दूसरी भावना थी । किसी भिखारी को दो पैसे देकर उससे पिण्ड छुडाना दूसरी बात है और उसका सुधार करना या हमेशा के लिए उसका भिखारीपन मिटा देना अन्य बात है । हमारे देश मे उदारता तो बहुत है मगर सामने वाले को गुलाम बने रहने देकर देने की उदारता है । गुलामी से छुडाकर देने की उदारता बहुत कम है ।

मुनीम ने लडके से कहा कि यहा मेरे पास आओ । लडका सोचने लगा कि मैं इस लिबास मे ऐसे भव्य भवन मे कैसे जाऊ ? वही खडा-खडा कहने लगा कि जो कुछ देना हो वह यही पर दें दो । मुनीम के बहुत आग्रह से वह उसके पास चला गया । मुनीम ने पूछा कि क्या तुम मुझे पहिचानते हो ? लडके ने कहा, आप जैसे उदार और बडे आदमी को कौन नही जानता ? मुनीम ने कहा, इन बढावा देने वाली बातो को जाने दो । मैं तेरा नौकर हूँ । तेरी

स्थिति विगड जाने से तू मुझे भूल गया है । मैं तुझे नही भूला हूँ । लडके ने कहा, माफ करिये सेठ साहिब, मेरी क्या बिसात जो आपको नौकर रख सकू । मैं तो दर-दर का भिखारी हूँ । मुनीम ने याद दिलाया कि मैं तुम्हारे यहाँ नौकर था । जब तुम छोटे थे तब बुरी सगति मे फस गये थे । मैं तुम्हे खूब समझाता था कि इन धूर्तों की सगति मे मत जाया करो । मेरी बात न मानने से आज तुम्हारी यह दशा है । तुमने मेरी बात न मानी थी, अत अब मैं तुम्हारी अवहेलना नही कर सकता ।

ज्ञानी लोग अभिमान नही करते । वे कभी यो नही कहते कि 'देखो मेरी बात न मानी थी अत अब उसका फल भोग रहे हो ! अब मैं कुछ मदद न करूगा' । ज्यादातर लोग किसी को उपालम्भ देने मे ही अपना पाण्डित्य मानते हैं । उपालम्भो हि पाण्डित्यम् । मैंने ऐसा कहा था, वैसा कहा था, मेरा कहना न मानने से ऐसा हुआ आदि बातें समझदार लोग नही कहते । आज-कल के बहुत से सुधारक कहे जाने वाले लोग भी ऐसे-ऐसे बुरे लफ्जो का प्रयोग करते हैं कि कुछ कहा नही जाता ।

लडके ने मुनीम को पहचान लिया । झट पैरो मे पड गया और अपने किए का पछतावा करने लगा—यदि आपको नौकरी से अलग न करता तो मेरी यह दुर्दशा न होती । मुनीम ने आश्वासन देते हुए कहा—घबडाओ मत, मैं अब भी तुम्हारा सेवक हूँ । यद्यपि तुम्हारे पिता के वक्त की सब दिखने वाली सम्पत्ति विनष्ट हो चुकी है तथापि मुझे कुछ गुप्त निधान का पता है । अब यदि मेरा कहना मानना मजूर हो और बुरी सोहवत मे न फसो तो मैं भेद बताने के लिए

तैयार हूँ जिसमे कि तुम पहिले के समान धनवान् बन जाओ। लडके ने सब बात स्वीकार करली । उसको स्नानादि करा कर अपने साथ भोजन करने के लिए बिठा लिया । उस मुनीम ने यह सोचकर कि यह भिखमगा रह चुका है, अब इसके साथ न बैठना चाहिए ,घृणा नही की । उसने यह सोचा कि अज्ञानवश होकर इससे जो भूलें हुई हैं, वे अब यह छोड रहा है और भविष्य मे सुधार करने का नियम लेता है । अत घृणा करना ठीक नही है किन्तु इसका सुधार करना चाहिये। घृणा करने की अपेक्षा यदि सुधार करने की बात अपना ली जाय तो मनुष्य-जाति का उद्धार हो जाय ।

लोग पुण्य और पाप का अर्थ करते हुए कहते हैं कि जो पुण्य लाया है वह पुण्य भोगता है और जो पाप लाया है वह पाप । लेकिन यदि सब लोग ऐसा कहने लग जाय तो क्या दशा हो ? इसका ख्याल करिये । डॉक्टर बीमार से कह दे कि तू अपने पापो का फल भोग रहा है, मैं कुछ इलाज न करूगा तो क्या आप यह बात पसन्द करेंगे ? पापी को पाप का उदय हुआ है मगर आपको किसका उदय है ?

दया धम पावे तो कोई पुण्यवान पावे, ज्यारे दया की बात सुहावे जी।
भारी करमा अनन्त ससारी, ज्यारे दया दाय नहीं आवे जी ॥

लोग यह मानते हैं कि जिसके पास गाडी, घोडी, लाडी तथा बाडी आदि साधन हो, जिसे अच्छा खानपान, कपडा, गहना, मिलता हो, तथा जिसके यहाँ नौकर-चाकर हो, वह पुण्यवान् है । इसके विपरीत जिसके पास खाना-पीना और कपडे आदि न हो, वह पापी है । पापी और पुण्यवान् की ऐसी व्याख्या अज्ञानी लोग करते हैं । ज्ञानीजन ऐसी व्याख्या नहीं करते । वे किसी के पास कपडे गहने आदि होने से उस

पुण्यवान् नही मानते और न इनका अभाव होने से किसी को पापी ही मानते हैं। ज्ञानी उसको पुण्यवान् मानते है जिसके हृदय मे दया है और जिसमे दया नही है वह पापी है। आप लोग कहोगे कि यह नई व्याख्या आपने कसे निकाली है? मैं कहता हूँ कि आप लोग भी पुण्यवान् और पापी की व्याख्या ऐसी ही मानते है, जैसी अभी मैं कर रहा हूँ। बात समझ मे आने की देरी है।

मान लो कि आपका एक लडका है जो अकेला ही है यानी आपका इकलौता पुत्र है। वह सडक पर खेल रहा था। एक सेठ उधर से मोटर मे सवार होकर निकला। धनवानो मे अक्सर दुर्व्यसनो का भी प्रचार होता है। जो जैसा होता है, उसके नौकर भी वैसे ही होते है। सेठ और ड्राइवर दोनो नशे मे मस्त थे। ड्राइवर बेभान होकर मोटर फेंक रहा था। आपका लडका मोटर की झपट मे आ गया। उसे सख्त चोट आई। हल्ला हुआ और वहुत से लोग इकट्ठे हो गये। तब ड्राइवर और सेठ की आँखें खुली। सेठ ने सोचा कि लडका घायल हो चुका है अत यदि मेरे सिर पर भार लू गा तो सजा हुए बिना न रहेगी। सेठ कहने लगा—कैसे-कैसे नालायक लोग हैं जो अपने बच्चो को भी नही सभालते! सडक पर आवारा छोड देते हैं! हमारे मोटर चलने के मार्ग मे आडे आ जाते हैं। यह भी मालूम नही कि यह रास्ता हम लोगो की मोटर निकलने का है। यह लडका किसका है? हम उस पर मुकद्दमा चलायेंगे। इस प्रकार वह चिल्लाया और जोर की आवाज से नौकर से कहा कि अमुक वकील के पास चलकर कहो कि मुकद्दमा चलाना है अत कानून देखकर दफा निकाल ले। सेठ मोटर मे बैठा

हुआ चला गया । लडका वही बेहोश अवस्था मे पडा रहा। इकट्ठी भीड में एक गरीब आदमी भी था । वह बहुत गरीब था । वह तुरन्त उस बच्चे को उठाकर अस्पताल मे ले गया और डॉक्टर से कहा कि न मालूम यह लडका किसका है? इसे मोटर एक्सीडेन्ट से चोट आई है । यह बडा दुखी है। आप इस केश को जल्दी ही सुधारने की मेहरबानी करिये।

लडके के घायल हो जाने की बात आपने भी सुनी। साथ मे यह भी सुन लिया कि मोटर मालिक श्रीमान् अनेक उपाधि-धारी मुकद्दमा चलाने की धमकी देकर भाग निकले और एक गरीब आदमी बच्चे को उठाकर अस्पताल ले गया है । आप अस्पताल पहुचे । बच्चे को यहा तक पहुचाने वाले गरीब को भी देख लिया । आप जरा हृदय पर हाथ रख कर कहिये कि आप किसे पुण्यवान और पापी समझते हैं ? बेहोश नादान बच्चे को छोडकर चले जाने वाले को या उसकी दया करके अस्पताल पहुचाने वाले को पुण्यवान् कहेंगे ? यद्यपि चालू व्याख्या के अनुसार वह सेठ बडा धनवान् और साधन-सम्पन्न था और यह गरीब जो कि बच्चे को अस्पताल ले गया कतई गरीब और साधन हीन था, हमारा दिल यही कहता है कि वह धनवान् सेठ पापी था और वह गरीब आदमी पुण्यवान् था। आत्मा जिस बात की साक्षी दे, वह बात ठीक होती है । सेठ और गरीब मे क्या अन्तर है, जिससे एक को पापी और दूसरे को पुण्यात्मा कहेंगे । अन्तर है हार्दिक दया भाव का। एक अपने धन के मद मे तडपते बच्चे को छोड कर चला गया और दूसरा "आत्मवत् सव भूतेषु" के अनुसार बच्चे की वेदना सहन न कर सका और सेवा करने लगा । एक

में दया का अभाव था और दूसरे का हृदय दया से लबालब भरा था।

यदि वह सेठ धनवान् होते हुए भी मोटर-दुर्घटना के बाद तुरन्त नीचे उतर कर बच्चे को सम्भालता और अस्पताल पहुचाता तथा अपनी भूल की माफी माग लेता तो वह भी पुण्यवान् कहलाता। पुण्य और पाप की व्याख्या केवल बाह्य ऋद्धि के होने न होने पर निर्भर नही है किन्तु इसके साथ-साथ दया भाव भी अपेक्षित है।

सब कुछ कहने का मतलब यह है कि ऊपरी आडम्बर होने से ही किसी को पुण्यवान् नहीं माना जा सकता। यदि हृदय मे दया हो और ऊपरी आडम्बर न हो, तो भी वह पुण्यवान् माना जायगा और महापुरुष उसकी सराहना करेंगे।

वह मुनीम कह सकता था कि ए लडके ! तू अपने किये का फल भोग। तू अपने पापो का फल भोग रहा है, इसमे मैं क्यो दखल दू ? किन्तु बुद्धिमान और ज्ञानी लोग ऐसी निर्दयता की बात नही कहते। वे सोचते हैं कि यदि किसी ने एक वक्त कहना न माना और कुमार्ग मे लग गया तो भी भविष्य मे उसका सुधार हो सकता हैं। कौन कह सकता है कि कब किसकी दशा सुधर सकती है और कब नही। हमारा कार्य तो सदा आशावादपूर्ण प्रयत्न करने का है। किसी के पूर्व के पाप या अवगुणादि पर ध्यान न देकर वर्तमान मे यदि वह सुधरना चाहता है तो सुधारने का प्रयत्न अवश्य करना चाहिए।

कोटि महा अघ पातक लागा, शरण गये प्रभु ताहु न त्यागा।

ज्ञानीजन शरण मे आये हुए के पापो पर ख्याल नहीं करते क्यो कि वे जानते हैं कि जब वह शरण में आ गया है तो पाप भावना को भी छोड़ चुका होगा। वे तो उसकी स्थिति सुधारने का प्रयत्न करते हैं। ज्ञानीजन कीड़े मकोड़े आदि पर भी दया करते हैं, तब मनुष्य पर क्यो न करेंगे?

•

चातुर्मास की चौदस को दया के सम्बन्ध में मुझे व्याख्यान मे कुछ कहना था किन्तु अन्य बातो मे यह बात कहने से रह गई थी। सक्षेप मे आज कहता हूँ। आप लोग विचार करते होगे कि हमने चौमासे की विनती की है इसलिए महाराज ने चातुर्मास किया है। किन्तु यदि चातुर्मास में एक स्थान पर ठहरने का हमारा नियम न होता तो क्या आपकी विनती होने पर भी हम यहा ठहर सकते थे? हमारा नियम है अत ठहरे हैं। नही तो लाख विनती होने पर भी नही रह सकते। चौमासे मे वर्षा के कारण बहुत जीव उत्पन्न हो जाते हैं। उनकी रक्षा करने के लिए चार मास हम लोग एक स्थान पर ठहरते हैं। अब हमारा आप से यह कहना है कि जिन जीवो की रक्षा करने के निमित्त हम यहा ठहरे हैं, उनकी आप भी दया करो। चौमासे मे जीवोत्पत्ति बहुत हो जाती है अत उनकी रक्षा सावधानी-पूर्वक करिये, जिससे आपके स्वास्थ्य और धर्म दोनो की रक्षा हो सके।

एक आदमी सडा आटा, सडी दाल आदि चीजें लाता है, जिनमे कीड़े पड चुके हैं। दूसरा आदमी ऐसी चीजें नहीं

खाता किन्तु साफ स्वच्छ जीव-रहित वस्तुए उपयोग मे लेता है । इन दोनो मे से आप किसको दयावान् कहोगे ? एक आदमी घर की चक्की से पिसा हुआ आटा खाता है और दूसरा आदमी मशीन की चक्की से पिसा हुआ आटा खाता है । दोनो मे से आप किसको दयावान् कहोगे ? इन दोनो तरह के आटो मे किसी प्रकार का अन्तर है या नही ? थोडी देर के लिये यह मान लिया जाय कि आप अनाज देख कर साफ करके ले गये किन्तु आपको अनाज डालने से पूर्व जो अनाज पिसा जा रहा था, उसमे कीडे थे तब आप कैसे बच सकते हैं ? उस कीडे वाले आटे का अश आपके आटे मे भी आयेगा या नही ? अवश्य आयेगा । कीडो के कलेवर से मिले हुए आटे का किंचित् भाग आपके पेट मे जरूर पहुचेगा । मैंने उरण मे सुना कि जिन टोकरो मे मच्छी बेची गई थी, उन्ही टोकरो मे गेहूँ भर कर चक्की पर पिसवाये गये । ऐसे आटे का अश आपके पेट मे पहुचेगा ही । दुख इस बात का है कि आजकल घर पर पीसना कठिन हो रहा है । यह ख्याल किया जाता है कि हम तो बम्बई की सेठानिया है, हम चक्की से आटा कैसे पीसे ? कल की चक्की मे सीधा पीसा हुआ मगवाये ।

आटा दाल आदि प्रत्येक वस्तु के विषय मे विवेक रखिये । यह मैं जरूर कहूँगा कि मेवाड, मालवा और मारवाड की अपेक्षा यहा ज्यादा विवेक है । फिर भी विशेष सावधानी रखने की जरूरत है ।

जो दया-पात्र है, उसकी स्थिति सुधारने वाला पुण्यवान् है । दया-पात्र को, पापी कह कर दुत्कारने वाला

स्वय पापी है । वह पुण्यवान् नही हो सकता, चाहे उसके पास कितनी ही ऋद्धि क्यो न हो ?

मुनीम ने उस लडके को आश्वासन देकर अपने यहाँ रखा और धीरे-धीरे उसकी आदतें सुधारी । बिका हुआ मकान वापस खरीद लिया गया । उस घर मे गुप्त रूप से रखे हुए रत्न निकाल कर उसे दे दिए गये । लडके ने मुनीम से कहा कि ये रत्न आप ही के हैं, कारण मैं तो मकान बेच ही चुका था । मुनीम ने कहा—ऐसा नहीं हो सकता । जो वस्तु जिसकी हो, वह उसी की रहेगी । लडके ने 'मुनीम के रत्न हैं' कह कर कितना विवेक दिखाया और अपनी कृतज्ञता प्रकट की । मुनीम ने अपने सेठ के पुत्र की स्थिति सुधार दी । वह पुण्यवान् था । अब यदि सेठ के लडके से भीख मागने के लिए कहा जाय तो क्या वह मागेगा ? कदापि नही ।

यह दृष्टान्त है । सेठ, मुनीम और लडके के समान ईश्वर, महात्मा और ससारी जीव हैं । बहुत से साधारण लोग कहते हैं कि हम साधुओ के यहा क्यों जाय और क्यों वहा मुख बाध कर बैठें ? मैं पूछता हूँ कि मुख बांधने में उनको लाज क्यो लगती है ? वेश्या के यहा जाने में तथा अन्य बुरे काम करने मे तो लाज नही लगती । केवल मुह बाधने मे ही लाज क्यो लगती है ? कहते हैं—यह तो बूढों का काम है । इस प्रकार इस आत्मा रूप सेठ के लडके ने विषय वासना और ससार के सग से काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सरादि दुर्गुणो से प्रेम कर रखा है । ऐसे समय मे अन्तरात्मा को जाननेवाले महात्मा का क्या कर्त्तव्य

है ? उनका कर्त्तव्य समझाने का है । वे बार बार समझाते हैं लेकिन वह नही मानता । अत मे आत्मा की स्थिति उस लडके के समान हो जाती है, जो भिखारी की तरह भीख मागता है । फिर भी महात्मा लोग उससे द्वेष नही करते । वे यह नही सोचते कि इस ने हमारी सिखामन का अथवा उपदेश का पालन नही किया है, अत फल भोग रहा है । महात्मा उसे अपने पास बुलाते हैं किन्तु जैसे उस भिखारी को मुनीम के पास जाने मे सकोच हुआ था, उसी प्रकार दुर्व्यसनो मे फसे हुए लोगो को साधु-सतो के समीप जाने मे सकोच होता है, लज्जा आती है । अपने व्यसनो के कारण लज्जित होकर वे दूर भागते हैं । किन्तु महात्मा लोग यह सोच कर कि यद्यपि इसकी आदतें खराब हो गई है फिर भी इसका आत्मा हमारे समान ही है, अत सुधार गुंजाइश मान कर पास बुलाते हैं ।

जो लोग यह कहते हैं कि हम साधुओ के पास क्यो जाय और क्यो मुख बाध कर उनके पास बैठे ? उनको भी साधु लोग यही उपदेश देते हैं कि भाई सत्सग करो ! महात्मा लोग उनके कथन से घबडाते नही हैं । वे यह सोच कर उन्हे माफ कर देते हैं कि अज्ञान के कारण ये लोग भूले हुए हैं । इनकी आत्मा हमारी आत्मा के समान है । अत वे जीवात्मा की बातो पर ध्यान न देकर बार २ सत्सग का उपदेश देते हैं ।

स्त्रियाँ भी कहती हैं, जो बूढी हैं, वे जाकर साधुओ के पास बैठे । हम से ऐसा न होगा, हम नौजवान हैं । उनको खाना-पीना मौजमजा करना अच्छा लगता है ।

साधुओ के पास ऐश-आराम का सामान नही है, अत उनके पास जाना अच्छा नही लगता । ज्ञानी कहते हैं, यह इनका दोप नही है । ये आत्मा की शक्ति को नही जानती, अत पुद्गलानदी बनी हुई हैं ।

कई लोग आत्मा के अस्तित्व के विपय मे भी सदेह करते हैं । आत्मा नही है, ऐसी दलीलें देते हैं । इसका कारण यही है कि वे महात्माओ के पास नही जाते हैं । यदि वे सत्पुरुषो के समागम मे आने लगें तो उनका यह सदेह मिट जाय ।

मदिरा न पीना और मास न खाना, यह जैनो का कुल रिवाज है । इस वश-परम्परागत रिवाज का पालन तभी तक हो सकता है जब तक लोग हमारे पास आते रहे । हमारे पास न आयें किन्तु आजकल के सुधरे हुए कहे जाने वाले लोगो की सोहबत मे रहे तो इस रिवाज का पालन नहीं हो सकता । आधुनिक सुधरे कहे जाने वाले लोग तो कहते हैं कि जैन धर्म मे मास-मदिरा-निपेध निष्कारण ही है । यदि भोजन हजम न होता हो तो थोडी शराब पीली जाय तथा शक्ति वृद्धि के लिए मास भक्षण किया जाय तो क्या हर्ज है ? ऐसी शिक्षा पाने वाले लोग कब तक बचे रह सकते हैं ? माता-पिता का कर्त्तव्य है कि वे इस बात का ध्यान रखें कि हमारा लडका बुरी सोहबत मे न पड जाय । अपने लडको को धार्मिक शिक्षा दिलाने का प्रयत्न किया जाय और सदा इस बात का ख्याल रखें कि जैन-कुल मे जन्म लेकर कही बुरी स्थिति मे न पड जाय । प्रयत्न करने और सावधानी रखने पर भी यदि कोई लडका न सुधरे तो

लाचारी होगी । प्रयत्न करने के पश्चात् भी न सुधरने वाले को तो श्रीकृष्ण भी न सुधार सके थे ।

श्रीकृष्ण ने अपने परिवार के लोगो से कह दिया था कि तुम लोग यह मत ख्याल करना कि हम कृष्ण के कुल मे जन्मे है, अत बुरे काम करे तो कोई हर्ज नही है। यदि तुम बुरे काम करोगे तो उस के परिणाम से मैं तुम्हारा बचाव नही कर सकू गा। तुम्हारी रक्षा और तुम्हारा उद्धार स्वय तुम्ही कर सकते हो । दूसरा कोई नही कर सकता ।

उद्धरेदात्मनात्मान, नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मन ॥

अर्थ—आत्मा से आत्मा का उद्धार स्वय करो। आत्मा को अवसादित मत करो । आत्मा ही आत्मा का बन्धु है और आत्मा ही आत्मा का शत्रु है ।

अत अपना उद्धार स्वय करो । दूसरो के भरोसे मत रहो । यदि अधिक न कर सको तो कम से कम तीन काम मत करो, जिससे तुम्हारी रक्षा हो सकेगी । जुआ, मदिरा और परस्त्री का त्याग कर लो ।

लोग जुआ खेल कर सोधा धन लेने जाते हैं किंतु पास वाला धन खो बैठते हैं और जुआ खेलने की आदत सिवाय सीख लेते हैं, जिससे भविष्य भी बिगड जाता है ।

एक बार यह लत लग जाने पर इससे पिण्ड छुडाना साधारण आदमी का काम नही है । ताश के पत्तो पर रुपये पैसे की शर्त लगा कर खेलना, लाटरी भरना, सट्टा

करना आदि सब जुआ ही है, जिसमें हार जीत की बाजी है, वह सब जुआ है । दुःख इस बात का है कि आज तो सरकार स्वयं लाटरी खोलती है और लोग धन प्राप्त करने के लिए रुपये लगाते हैं । लाटरी भरने वाले भाई यह नहीं सोचते कि लाटरी खोलने वाले पहले ही कह देते हैं कि जितने रुपये टिकटों के प्राप्त होंगे, उन में से एक दो या अधिक लाख रुपये रख लिये जायेंगे, शेष रुपये इनाम दिए जायेंगे । यह स्पष्ट मालूम होता है कि लाटरी खोलने वाले बचत करने के लिए ही लाटरी खोलते हैं । अधिक रुपये इकट्ठा करके थोड़े रुपये दे देते हैं । बहुतों से लेकर थोड़ों को कुछ रुपये इनाम रूप से बांट दिये जाते हैं । किन्तु लाटरी भरने वाले की मंशा यह रहती है कि अन्य लोग मरें तो मरें, हमारा नम्बर पहला निकलना चाहिए ।

श्रीकृष्ण ने अपने परिवार के लोगों से जुआ, शराब और व्यभिचार छोड़ने के लिए कहा था, किंतु उनके उपदेश की बातों को पैरों तले कुचल कर वे मनचाहा बरताव करने लगे थे । परिणाम यह हुआ कि एक दिन की घटना से सारा मूसल-पर्व बन गया ।

लोग कहते हैं कि जैनियों में फूट है । फूट क्यों न हो, जब एक आदमी दारू पीता हो और दूसरा न पीता हो तो क्या दोनों में मेल रह सकता है ? मेल तभी तक निभ सकता है, जब सब का समान आचार-व्यवहार हो ।

अंत में यादवकुल के लड़कों में फूट पड़ी और वे मूसल लेकर आपस में लड़ने मरने लगे । यह देख कर श्रीकृष्ण हंसने लगे । किसी ने श्रीकृष्ण से कहा कि आपका

परिवार विनाश की ओर जा रहा है और आप हंस रहे हैं? श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया कि इनके सिर फूटने ही चाहिए। इनके सिर दारू, जुआ और व्यभिचार सेवन करने से पहिले ही फूट रहे हैं। फूटे का क्या फूटना। मैंने पहले ही जान लिया है कि इनका सर्वनाश निकट है।

यादव लोग नष्ट हो गये, यह सर्वविदित है। दुर्व्यसन सेवन करने से कोई सुखी नही हुआ है। बडे-बडे बिगड चुके हैं। किसी को दो दिन चाहे सुखी समझ लो किन्तु वह सुख नही है। कहा है—

> चढ ऊपर वा मे गिरे, शिखर नही वह रूप।
> जिस सुख अन्दर दुःख बसे, न है सुख है दुःखरूप॥

जो ऊपर चढ कर वापिस गिर जाता है, वह चढा हुआ नही गिना जायगा किन्तु गिरा हुआ ही गिना जायगा। इसी प्रकार जिस सुख के पीछे दुःख लगा हुआ है, वह सुख नही है किन्तु दुःख ही है।

चाहे कोई कैसे ही दुर्व्यसनो मे फसा हो किन्तु अन्तरात्मा को जानने वाले महात्मा लोग किसी से द्वेष नही करते। श्रीकृष्ण के समान उससे यही कहते हैं कि दुर्व्यसन त्यागोगे तो दुःख कभी न होगा। ज्ञानी लोग किसी से घृणा नही करते। घोर से घोर पापी को भी अपना लेते हैं। वे उसके आत्मा की शक्ति को जानते हैं और समझाते हैं कि—

> अपिचेत्सुदुराचारो यो भजते मा अनन्यभाक्।

कैसा भी दुराचारी व्यक्ति हो वह अनन्य भाव से

करना आदि सब जुआ ही है, जिसमे हार जीत की बाजी है, वह सब जुआ है। दुःख इस बात का है कि आज तो सरकार स्वय लाटरी खोलती है और लोग धन प्राप्त करने के लिए रुपये लगाते हैं। लाटरी भरने वाले भाई यह नहीं सोचते कि लाटरी खोलने वाले पहले ही कह देते हैं कि जितने रुपये टिकटो के प्राप्त होंगे, उन मे से एक दो या अधिक लाख रुपये रख लिये जायेंगे, शेष रुपये इनाम दिए जायेंगे। यह स्पष्ट मालूम होता है कि लाटरी खोलने वाले बचत करने के लिए ही लाटरी खोलते हैं। अधिक रुपये इकट्ठा करके थोडे रुपये दे देते हैं। बहुतो से लेकर थोडों को कुछ रुपये इनाम रूप से बाट दिये जाते हैं। किन्तु लाटरी भरने वाले की मशा यह रहती है कि अन्य लोग मरें तो मरें, हमारा नम्बर पहला निकलना चाहिए।

श्रीकृष्ण ने अपने परिवार के लोगो से जुआ, शराब और व्यभिचार छोडने के लिए कहा था, किन्तु उनके उपदेश की बातो को पैरो तले कुचल कर वे मनचाहा बरताव करने लगे थे। परिणाम यह हुआ कि एक दिन की घटना से सारा मूसल-पर्व बन गया।

लोग कहते हैं कि जैनियो मे फूट है। फूट क्यो न हो, जब एक आदमी दारू पीता हो और दूसरा न पीता हो तो क्या दोनो मे मेल रह सकता है? मग तभी तक निभ सकता है, जब सब का समान आचार-व्यवहार हो।

अन्त मे यादवकुल के लडको मे फूट पडी और वे मूसल लेकर आपस मे लडने मरने लगे। यह देख कर श्रीकृष्ण हसने लगे। किसी ने श्रीकृष्ण से कहा कि आपका

परिवार विनाश की ओर जा रहा है और आप हस रहे हैं? श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया कि इनके सिर फूटने ही चाहिए। इनके सिर दारू, जुआ और व्यभिचार सेवन करने से पहिले ही फूट रहे हैं। फूटे का क्या फूटना। मैंने पहले ही जान लिया है कि इनका सर्वनाश निकट है।

यादव लोग नष्ट हो गये, यह सर्वविदित है। दुर्व्यसन सेवन करने से कोई सुखी नही हुआ है। वडे-वडे बिगड चुके हैं। किसी को दो दिन चाहे सुखी समझ लो किन्तु वह सुख नही है। कहा है—

> चढ ऊपर वा से गिरे, शिखर नही वह रूप।
> जिस सुख अन्दर दु ख वसे, व है सुख है दु खरूप॥

जो ऊपर चढ कर वापिस गिर जाता है, वह चढा हुआ नही गिना जायगा किन्तु गिरा हुआ ही गिना जायगा। इसी प्रकार जिस सुख के पीछे दु ख लगा हुआ है, वह सुख नही है किन्तु दु ख ही है।

चाहे कोई कैसे ही दुर्व्यसनो मे फसा हो किन्तु अन्तरात्मा को जानने वाले महात्मा लोग किसी से द्वेष नही करते। श्रीकृष्ण के समान उससे यही कहते हैं कि दुर्व्यसन त्यागोगे तो दु ख कभी न होगा। ज्ञानी लोग किसी से घृणा नही करते। घोर से घोर पापी को भी अपना लेते हैं। वे उसके आत्मा की शक्ति को जानते हैं और समझाते हैं कि—

> अपिचेत्सुदुराचारो यो भजते मा अनन्यभाक्।

कैसा भी दुराचारी व्यक्ति हो वह अनन्य भाव से

परमात्मा की सेवा करे तो उसका कल्याण निश्चित है। अन्तरात्मा की शक्ति को जानने वाले बहिरात्मा पर क्रोध या द्वेष नही करते । वे तो सदा यही कहेंगे कि आत्म स्वरूप को जान कर परमात्मा का भजन करो तो भलाई है।

साराश यह है कि 'देवो भूत्वा देव यजेत्' परमात्मा बन कर परमात्मा का भजन करो । यह समझो कि मेरा और परमात्मा का आत्मा समान है । परमात्मा निर्मल है मैं अभी मलिन हूँ । इस मलिनता को मिटाने के लिए ही परमात्मा का भजन करता हूँ । महात्माओ की शरण पकड़ कर भजन करने से किसी प्रकार की कठिनाई नही होगी।

चरित्र चित्रण--

अब मैं इस प्रकार भजन करने वाले की बात कहता हूँ ।

> तिनपुर सेठ श्रावक दृढ धर्मी, यथा नाम जिनदास ।
> अहद्दासी नारी खासी, रूप शील गुणवान रे ।।धन०।।

चम्पानगरी का वर्णन किया गया है । नगरी की रमणीयता, उसकी आवश्यकताए, राजा रानी और प्रजा आदि के कर्त्तव्य की चर्चा बहुत की जा सकती है किन्तु अभी इतना ही कहता हूँ कि चम्पा मे बाह्य सुधार ही न थे किन्तु अन्तरग सुधार भी थे ।

आज बाह्य सुधार तो है लेकिन भीतर बहुत विगाड है । उस जमाने मे मोटर, बिजली, ट्राम आदि न थे फिर भी उस समय की स्थिति बहुत सुधरी हुई थी । आप कहेंगे

रेल तार विजली आदि के विना कैसे सुधार और कैसा सुख ? परन्तु इनके कारण आज जो स्थिति हो रही है उस पर दृष्टिपात किया जाय तो मालूम होगा कि पहिले की अपेक्षा अभी भयकर दुःख है । ये वाहर के भपके मूल को खराब कर रहे हैं । एक जहाज मे वाग, वगीचे, नाचरग, खेलकूद, आदि के सब साधन है किन्तु समुद्र के ऐन बीच मे उसके छेद हो गया अथवा एजिन खराब हो गया, उस समय उस जहाज मे वैठने वालो की क्या हालत होगी ? नाचरग आदि उन्हे कैसे लगेंगे ? मौज मजा भूल कर वे लोग हाय-तोवा करने लगेगे । दूसरा जहाज ऐसा है जिसमे ऐश-अशरत का साजो-समान तो नही है मगर न उसमे छेद ही हुआ है और न उसका एजिन ही विगडा है । दोनो जहाजो मे से आप किसे पसन्द करेगे ? दूसरे को पसन्द करेगे ।

आज के सुधारो के विषय मे भी यही बात है । आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता को लोग आनन्द का कारण मानते हैं । किन्तु इसका एजिन कितना विगडा हुआ है यह नही देखते । हमारे देश के लोगो का दिमाग वहा की सभ्यता के कारण विगड रहा है । वे उस सभ्यता को आनन्ददायिनी मानते हैं । किन्तु मानव जीवन को इस सभ्यता ने कितना खोखला कर दिया है, इस बात को नही देखते । जिस देश की सभ्यता को आदर्श मान कर पसन्द किया जाता है वहा व्यभिचार को पाप नही माना जाता । पेरिस वडा सुन्दर शहर है । सुना है, वहा किसी स्त्री के पास कोई परपुरुष आ जाय तो उसके पति को बाहर चला जाना पडता है । यह वहा का रिवाज है, सभ्यता है । अमेरिका देश, जो सब से समृद्ध और सुधरा हुआ गिना

जाता है वहा के लिये भी सुनने मे आया है कि सौ मे से पिच्चानवे लग्न सबध वापस टूट जाते हैं । यह है वहा की सभ्यता । मैं यह नही कहता है कि बाह्य ठाठ बाठ न हो किन्तु आन्तरिक सुधार होना आवश्यक है ।

चम्पा जैसी बाहर से सुन्दर थी, वैसी ही भीतर से सुसस्कृत थी । जिस प्रकार खान में से एक हीरा निकलने पर भी वह हीरे की खान कही जाती है जब कि मिट्टी पत्थर उसमे बहुत होते हैं, इसी प्रकार किसी नगर मे एक भी महापुरुष हो तो वह उस सारे नगर को प्रसिद्ध कर देता है । अवतार ज्यादा नही होते । मगर एक अवतार ही सारे ससार को प्रकाशित कर देता है ।

चम्पा आर्य क्षेत्र मे गिनी गई है । वहा जिनदास नामक सेठ रहता था । चम्पा मे भगवान् महावीर कई बार पधारे थे । कौणिक भी चम्पा मे ही हुआ है । यह नहीं कहा जा सकता कि चम्पा एक थी या दो । हम इतिहास नही सुना रहे हैं किन्तु धर्मकथा सुना रहे हैं । धर्म से अनेक इतिहास निकलते हैं । अत धर्मकथा से इतिहास को मत तोलो । यह धर्मकथा है । इसमे बताये हुए तत्व की तरफ ख्याल करो । भगवान् महावीर के समय मे ही चम्पा के कौणिक और दधिवाहन दो राजा शास्त्रो मे वर्णित हैं । अत कौणिक और दधिवाहन दोनो की चम्पा एक ही थी अथवा अलग अलग, यह कहा नही जा सकता ।

जिनदास चम्पा नगरी मे रहता था । वह आनन्द श्रावक के समान श्रावक था । उसकी स्त्री का नाम अर्हद्दासी था, जो श्राविका थी । ये दोनो नाम वास्तविक हैं

या काल्पनिक भी नही कहा जा सकता । लेकिन दोनो ही नाम सार्थक और आनन्ददायक हैं । पहले के लोग 'यथा नाम तथा गुण' होते थे । यही कारण है कि उनके यहा सुदर्शन जैसा लडका उत्पन्न हुआ था । जैसो का फल तैसा होता है, यह प्रसिद्ध बात है । आप भी यदि सुदर्शन जैसा पुत्र चाहते हो तो जिनदास और अर्हद्दासी जैसे बनो । ऐसा करोगे तो कल्याण है ।

राजकोट
८—७—३६ का व्याख्यान

७ : अरिष्टनेमि की दया

"श्री जिन मोहनगारो छे, जीवन प्राण हमारो छे।"

यह बाईसवें तीर्थंकर भगवान् अरिष्टनेमि की प्रार्थना है। परमात्मा की प्रार्थना एक प्रकार से परमात्मा की भक्ति है। ज्ञानियो ने अनेक अग बताये हैं। उन मे प्रार्थना भी भक्ति का एक मुख्य अग है। दार्शनिको ने अपने तत्व का पोषण करने के लिए अनेक रीति से प्राथना की है। जैन एकान्तवादी नही हैं। जैन दर्शन प्रत्येक वस्तु का अनेक दृष्टियो से विचार करता है। वह वस्तु को एक दृष्टि से देखता है और अनेक दृष्टियो से भी। अत जैन की प्राथना कुछ और ही है।

भक्ति के साकार और निराकार के भेद से दो भेद हैं। प्रार्थना को साकार भेद से देखना या निराकार भेद से, एक प्रश्न है। ज्ञानी कहते हैं, दोनो का समन्वय किया जाय। दोनो भेदो को मिला कर प्रार्थना की जाय। प्रार्थना पर अनेक वार बोल चुका हूँ, आज भी कुछ कहूँगा।

ज्ञानी जन कहते हैं कि साकार प्रार्थना के लिए तीर्थंकर और निराकार प्रार्थना के लिए सिद्ध आदर्श रूप हैं।

इन दोनो को मिला कर प्रार्थना करनी चाहिए। प्रार्थना करते समय यह भावना रखनी चाहिए कि मैं सब प्रकार से परमात्मा की शरण मे जाता हूँ। यदि यह भावना न रखी गई, परमात्मा को सर्वस्व समर्पित न किया गया, अपने बल और बुद्धि को अपने मे ही रख कर प्रार्थना की गई, उसकी शरण मे पूरी तौर से न गये, तो वह प्रार्थना न होगी, प्रार्थना का ढोग होगा। सच्ची प्रार्थना तब है, जब परमात्मा को सर्वस्व अर्पण कर दिया जावे। परमात्मा को अपना सर्वस्व कैसे समर्पित करना चाहिए तथा किस प्रकार सच्ची भक्ति करनी चाहिए, यह समझने के लिए हमारे सामने भगवान् नेमिनाथ और राजेमती का चरित्र मौजूद है। साकार निराकार प्रार्थना का स्वरूप भी इस चरित्र से ध्यान मे आ जायगा।

राजेमती ने भगवान् नेमिनाथ को सिर्फ दृष्टि से देखा ही था और वह भी उनको पति रूप से स्वीकार करने के लिए। उस समय भगवान् दुल्हा बने हुए हाथी पर विराजमान थे। भगवान् राजकुमार थे। उनके साथ श्रीकृष्ण, दश दशार्ह और सारी बरात थी। उन पर चवर छत्र हो रहे थे। राजेमती के समान अभिलाषा वाली स्त्री को अपने पति को ऐसे लिबास मे देख कर कैसे २ विचार हो सकते हैं, वैसे ही विचार राजेमती के भी हुए थे। वह यह समझ रही थी कि भगवान् मेरे साथ सादी करने के लिए आ रहे हैं। लोग भी ऐसा ही समझते थे कि भगवान् विवाह करने के लिए जा रहे हैं। व्यवहार मे सब कोई यह ख्याल कर रहे थे किन्तु निश्चय मे भगवान् कुछ अन्य ही विवाह करने जा रहे थे। उन्हे जीवो की रक्षा करने तथा

यादवो मे करुणा बुद्धि उत्पन्न करनी थी । वे केवल मुख से कहने वाले ही न थे किन्तु करके दिखाने वाले थे । उनके सब काम किसी तत्वपूर्ण मुद्दे को लिए हुए थे । जीव-रक्षा के कार्य को सिद्ध करने के लिए ही वे बरात सजा कर विवाह करने के बहाने से आये थे ।

सुनि पुकार पशु की करुणा करि जानि जगत सुख फीको ।
नव भव नह तज्यो जीवन मे उग्रसेन नृप धी को ॥

जब भगवान् तोरणद्वार पर आ रहे थे तब उन्हे उस समय भारतवष मे फैली हुई महान् हिसा के दर्शन हो रहे थे । उस समय यादवी हिसा और यादवी अत्याचार बहुत बढ गये थे, अपनी सीमा लाघ चुके थे । यादवो का अन्याय और अत्याचार सारे ससार मे फैल रहा था । उनके द्वारा हिसा के घोर काण्ड हुआ करते थे । न केवल विवाहादि प्रसगो पर किन्तु हर प्रसग पर पशुओ की घोर हिसा की जाती थी । उस समय मास मदिरा और विषय सेवन एक साधारण बात हो गई थी । इस पाप को रोकने के लिए ही भगवान् नेमिनाथ ने विवाह का स्वाग रचा था और बरात सजाई थी ।

प्रत्येक बात पर एकान्त दृष्टि से विचार नही करना चाहिए किन्तु अनेकान्त दृष्टि से सोचना चाहिए । भगवान् तीन ज्ञान के धारी थे । वे जानते थे कि मेरे पूर्वज इक्कीस तीर्थंकर यह फरमा गये है कि नेमजी ब्रह्मचारी रहेगे । यह जानते हुए भी भगवान् नेमिनाथ विवाह करने के लिए क्यो चले थे ? इस विषय पर यदि बारीकी से विचार

करोगे तो मालूम होगा कि भगवान् ने साकार भगवान् का कैसा रूप रचा था। नेमिनाथ ने साकार भगवान् का जैसा चरित्र रचा था, वैसा चरित्र मेरी समझ से दूसरे किसी ने नही रचा है। उनकी बराबरी का उदाहरण मुझे नही दिखाई देता है। यदि कोई ऐसा दूसरा उदाहरण बताये तो मैं मानने के लिए तैयार हूँ किन्तु ऐसा उदाहरण मिलना बहुत ही कठिन है। जैसा रचनात्मक काम भगवान् अरिष्ट-नेमि ने करके दिखाया, वैसा किसी ने नही किया।

यादव कुल मे जैसी हिंसा और पाप फैले हुए थे, उनके विषय मे भगवान् यह सोचा करते थे कि मैं जिस कुल मे उत्पन्न हुआ हूँ, उस कुल के युवक इस प्रकार के घोर कार्य करे, यह मैं कैसे सहन कर सकता हूँ। भगवान् चुपचाप सारी परिस्थिति देख रहे थे और किसी अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे। तीन सौ वर्ष तक वे अवसर की प्रतीक्षा करते रहे। अन्त मे यह निश्चय किया कि इस पाप के लिए दूसरो को दोषी बताने की अपेक्षा इसे मिटाने का स्वय ही प्रयत्न करना चाहिए।

आजकल के लोग दूसरो को दोष देना जानते हैं मगर खुद का कर्त्तव्य नही समझते। यदि लोग अपना कर्त्तव्य देखने लगें और दूसरो पर दोषारोपण करना छोड दें तो ससार को सुधरने मे क्या देर लगे ? जब मैं जगल गया था तब रास्ते मे एक दीवार पर यह लिखा हुआ देखा कि 'आलस्य, मनुष्य के लिए जीवित कब्र है।' यदि विचार किया जाय तो यह वाक्य कितना अच्छा और ठीक है। आलस्य ही मनुष्य को जीवित कब्र मे डालता है। आलस्य

के कारण ही मनुष्य अपने कर्त्तव्य की निगाह नहीं करता और दूसरो पर दोष थोपता है ।

भगवान् अरिष्टनेमि अपना कर्त्तव्य देखते थे, अत आलस्य त्याग कर रचनात्मक काम किया । यदि वे शक्ति से काम लेना चाहते तो भी ले सकते थे क्योंकि उन मे श्रीकृष्ण को पराजित करने जितनी शक्ति थी । हाथ में चक्र लेकर उसका डर दिखा कर भी लोगो से कह सकते थे कि हिंसा बद करते हो या नही ? और लोग भी उनके डर के मारे हिंसा बद कर सकते थे । किन्तु भगवान् जोर जुल्म पूर्वक धर्म-प्रचार करने के विरोधी थे । वे जानते थे कि शक्ति के द्वारा यद्यपि लोग ऊपरी हिंसा करना छोड़ देंगे किन्तु उनकी भावना मे जो हिंसा होगी, वह ज्यो की त्यो कायम रहेगी बल्कि जोर जुल्म का शिकार बना हुआ व्यक्ति भाव-हिंसा अधिक ही करता है । भगवान् ने शक्ति-प्रयोग नही किया । हिंसा बद कराने का काम बडा गभीर है । हिंसा को बद कराने के लिए हिंसा की सहायता लेना ठीक नही है । इस प्रकार हिंसा बद भी नही हो सकती । खून का भरा कपडा खून मे धोने से कैसे साफ हो सकता है ? अहिंसा के गभीर तत्व की रक्षा करने के लिए भगवान् अवसर की प्रतीक्षा करते रहे । जब उन्होने उपयुक्त अवसर जान लिया तब भी लोगो से यह नही कहा कि मैं अमुक प्रयोजन से बरात सजा रहा हूँ । अत लोगों को सच्ची हकीकत मालूम न थी । भगवान् नेमिनाथ को बरात सजा कर विवाह करने के लिए जाते देख कर इन्द्र भी आश्चर्य मे पड गये और विचार करने लगे कि इक्कीस तीर्थंकरो से हमने ऐसा सुना है कि बाईसवे तीर्थंकर नेमिनाथ बाल ब्रह्म-

चारी रहेगे । फिर भगवान् ऐसा क्यो कर रहे हैं ? महापुरुषो के कामो मे दखल करना ठीक नही है ऐसा सोच कर इन्द्र ने यह नाटक देखने का निश्चय किया ।

फलानुमेया खलु प्रारभा ।

महापुरुषो ने किस मतलब से कौनसा काम आरम्भ किया है, यह साधारण व्यक्ति नही समझ सकते । उस काम के परिणाम से ही जान सकते है कि फला मतलब से वह काम किया गया था ।

ईशानेन्द्र और शक्रेन्द्र भी बरात मे शामिल हो गये । श्रीकृष्ण को मन मे फिक्र हो गई कि कही ये इन्द्र लोग विवाह मे विघ्न न कर दें । बडी मुश्किल से बरात सजाई है और नेमजी को तैयार किया है । श्रीकृष्ण ने शक्रेन्द्र से कहा कि आप बारात मे पधारे हैं सो तो अच्छी बात है मगर महापुरुषो का यह नियम होता है वे कि बिना आमत्रण के किसी जल्से मे शरीक नही होते । आप बिना आमत्रण के यहा कैसे पधारे हैं ? कृष्ण के पूछने के उद्देश्य को इन्द्र समझ गये । इन्द्र ने कहा, हम किसी विशेष प्रयोजन से नही आये हैं । हमे यह विवाह कौतुक मालूम पडा है, अत देखने आये हैं । देखने के लिए आमत्रण की जरूरत नहीं होती । देखने का सब किसी को अधिकार है ।

हेमचन्द भाई और मनसुख भाई दोनो यहा बिना आमत्रण के आये हैं । ये क्यो आये है और किसके मेहमान हैं ? ये किसी के मेहमान नही हैं । ये हमारे मेहमान हैं । लेकिन हमारे पास खान पान और पान-सुपारी नही है

जिनसे इनकी मेहमानदारी करें। खान पान और पान-सुपारी इनके पास बहुत है । इसके लिए ये बिना आमन्त्रण नहीं आ सकते । ये जैसी मेहमानी लेने आये हैं, मैं यथाशक्ति देने का प्रयत्न करूंगा । मेरे ख्याल से ये सदुपदेश सुनने आये हैं ।

इन्द्र सोच रहे हैं कि इक्कीस तीर्थंकरो की कही हुई बात ये कैसे लोप रहे हैं ? देखे क्या होता है ? श्रीकृष्ण से यह कह दिया, आप चिन्ता न करें । हम किसी प्रकार का विघ्न न करेंगे । हम तो चुपचाप कौतुक मात्र देखेंगे । आप भी भगवान् के साकार चरित्र को देखिये ।

बरात के साथ भगवान् तोरणद्वार पर आ रहे हैं। तोरणद्वार के मार्ग मे वाडो और पिंजरो मे बद किये हुए अनेक पशु-पक्षी रोके हुए थे । कुछ पशु-पक्षी मनुष्यो के सहवास मे रहने वाले थे और कुछ जगल के निर्दोष प्राणी थे । उन पशुओ के मन मे बहुत खलबली मची हुई थी ।

लोग सोचते होगे कि घबडाने या न घबडाने मे पशु-पक्षी क्या समझते होगे। किन्तु मौत से सब जीव डरते हैं और उससे बचना चाहते हैं । कोठारी बलवतसिंह जी ने उदयपुर की एक घटना मुझे सुनाई थी । उन्होने कहा—उदयपुर के कसाइयो के यहा से एक भेड भाग निकला । कसाई लोग उसे कतल करने लेजा रहे थे । वह किसी तरह अपनी जान बचा कर भाग गया और पिछोला नामक तालाब में कूद गया । तैरता तैरता वह उस पार पहुच गया तथा पहाडों मे भाग गया । वह तीन दिन तक पहाडो मे रहा लेकिन किसी भी हिंसक पशु ने उसे हाथ न लगाया । तीन दिन

बाद वह भेड दरबार को शिकार करते वक्त मिला । दरबार ने पकड कर उसे मेरे यहा पहुचा दिया। प्रत्येक जीव अपनी रक्षा करने का प्रयास करता है । कत्लखाने जाने के वक्त का दृश्य सब जानते ही हैं ।

भगवान् अवधिज्ञानी थे । अत यह जानते थे कि ये पशु पक्षी क्यो बाध कर रखे हुए हैं । फिर भी पशुओ की पुकार सुन कर सब लोग इस बात को सुन सके, इस आशय से सारथी से पूछते हैं –

कस्सट्ठाए इमे पाणा एए सव्व सुहेसिणो
वाडेहिं पिंजरेहिं च सन्निरुद्धाए अत्थइ ।

अर्थ—हे सारथी ! ये सुख चाहने वाले प्राणी किसके लिए बाडे और पिंजडो मे बद हैं ?

भगवान् भी बालक या अनजान के समान चरित्र कर रहे हैं । एक साधारण आदमी भी इस बात का अदाजा लगा सकता है कि ये प्राणी विवाह के समय बारातियो और मेहमानो के लिए मारे जाने के लिये ही बन्द किये हुए हैं । भगवान् ने साधारण व्यक्ति द्वारा किये जाने वाले अनुमान से काम न लेकर सारथी से पूछा कि ये जीव क्यो बद किये गये हैं ? जैसे हम लोग सुखैषी है वैसे ही ये प्राणी भी सुखैषी हैं । इन बेचारो को इन की मरजी के खिलाफ बद करके क्यो दु खी बनाया जा रहा है ?

भगवान् के इस कथन मे बहुत रहस्य है । लोग समझते हैं कि हमारे सुख के लिये ये पशु–पक्षी इकट्ठे किये गये हैं मगर भगवान् के कथन का रहस्य है कि तुम लोग

सुखी नही हो । यदि तुम सुखी होते तो ये पशु-पक्षी दु.खी नही हो सकते । अमृत के वृक्ष मे अमृतमय ही फल लगता है। वह जहरीला फल नही दे सकता । क्षीरसागर के पानी से किसी को विष नही चढ सकता । जो दवा लाभदायक है वह किसी को मार नही सकती । अर्थात् जो जैसा होता है, उसका फल भी वैसा ही शुभ या अशुभ होता है । यदि तुम खुद दु खी हो तो तुम से दूसरा कोई सुखी नही हो सकता। और यदि तुम सुखी हो तो दूसरा तुम से दु खी, नही हो सकता । जो सुखी है, उसमे से सब के लिए सदा सुख ही निकलेगा, दु ख कदापि नही निकलता । तुम्हारे आश्रित प्राणी दु खी हैं और सुख के अभिलाषी हैं । उनके दु ख दूर कीजिये । आज आप लोगो मे दु ख है इसी कारण अन्य लोग भी दु खी हैं । आप लोग अपने दु ख को दूर करने के लिये भगवान् से प्रार्थना करिये ।

भगवान् का प्रश्न सुन कर सारथी कहने लगा कि आप यह क्या पूछ रहे हैं ? क्या आपको यह मालूम नहीं है कि ये पशु यहा क्यों लाये गये है ?

तुज्भ विवाह् कज्जमि भोयावेऊ वहु जए ।
सोऊए तस्य वयए वहुपाणि विणासए ॥

हे भगवान् ! आपके विवाह मे बहुत लोगो को खिलाने के लिए ये प्राणी बन्द करके रखे गये हैं । इन प्राणियों को मार कर इनके मास से बहुत लोगो को भोजन दिया जायगा ।

यह उत्तर सुन कर भगवान् विचार-सागर मे डूब गये कि अहो ! मेरे विवाह के निमित्त ये बेचारे मूक प्राणी इकट्ठे किए हैं । ये कुछ देर बाद मार डाले जायेंगे । जब इन्हे मारा जायगा, तब इसका शब्द कैसा करुण होगा ? ये कैसे दुःखी होगे ? भगवान् ने बहुत प्राणियों का विनाश वाला उसका वचन सुनकर सारथी से कहा–

जइ मज्झ कारणा एए हम्मन्ति सुबहू जीवा ।
न मे एय तु निस्सेस परलोए भविस्सइ ।।

दूसरो को उपदेश देने की क्या पद्धति है, यह भगवान् नेमिनाथ के चरित्र से समझिये । भगवान् तीन ज्ञान के स्वामी थे, फिर भी ससार के लोगो को उपदेश देने के लिए उन जीवो को हिंसा का कारण अपने आपको माना है । भगवान् यह कह सकते थे कि मैं मास नही खाता हूँ, अत इन जीवो की हिंसा का दोष मुझ पर नही लग सकता है । ऐसा न कहकर सरथी के कहने पर उन जीवो की हिंसा का कारण अपने आपको स्वीकार कर लिया । आज हर बात मे वनियापन दिखाया जाता है । अपने आपको निर्दोष साबित करने के लिए दूसरो पर दोषारोपण कर दिया जाता है । यह बडी भारी कमजोरी है ।

क्या भगवान् अरिष्टनेमि के भक्तो का यह लक्षण हो सकता है कि वे अपना दोष दूसरो पर डाल दे । जिनकी हम मोहनगारो कह कर स्तुति कर रहे हैं, वे पशु-पक्षियो की हिंसा अपने सिर लेकर कह रहे हैं कि यह हिंसा परलोक मे निःश्रेयस साधक नही हो सकती । अफसोस है कि आज के बहुत से लोगो को तो पाप क्या है, इसका भी पता नही है ।

सुखी नही हो। यदि तुम सुखी होते तो ये पशु-पक्षी दुःखी नही हो सकते। अमृत के वृक्ष मे अमृतमय ही फल लगता है। वह जहरीला फल नही दे सकता। क्षीरसागर के पानी से किसी को विष नही चढ सकता। जो दवा लाभदायक है वह किसी को मार नही सकती। अर्थात् जो जैसा होता है, उसका फल भी वैसा ही शुभ या अशुभ होता है। यदि तुम खुद दुःखी हो तो तुम से दूसरा कोई सुखी नही हो सकता। और यदि तुम सुखी हो तो दूसरा तुम से दुःखी नही हो सकता। जो सुखी है, उसमे से सब के लिए सदा सुख ही निकलेगा, दुःख कदापि नही निकलता। तुम्हारे आश्रित प्राणी दुःखी हैं और सुख के अभिलाषी हैं। उनके दुःख दूर कीजिये। आज आप लोगो मे दुःख है इसी कारण अन्य लोग भी दुःखी हैं। आप लोग अपने दुःख को दूर करने के लिये भगवान् से प्रार्थना करिये।

भगवान् का प्रश्न सुन कर सारथी कहने लगा कि आप यह क्या पूछ रहे हैं ? क्या आपको यह मालूम नहीं है कि ये पशु यहा क्यो लाये गये है ?

> तुज्झ विवाह कज्जमि भोयावेऊ बहु जण ।
> सोऊण तस्य वयण बहुपाणि विणासण ॥

हे भगवान् ! आपके विवाह मे बहुत लोगों को खिलाने के लिए ये प्राणी बन्द करके रखे गये हैं। इन प्राणियो को मार कर इनके मास से बहुत लोगो को भोजन दिया जायगा।

यह उत्तर सुन कर भगवान् विचार-सागर मे डूब गये कि अहो ! मेरे विवाह के निमित्त ये वेचारे मुक प्राणी इकट्ठे किए हैं । ये कुछ देर वाद मार डाले जायेंगे । जव इन्हे मारा जायगा, तव इसका शब्द कैसा करुण होगा ? ये कैसे दु खी होगे ? भगवान् ने बहुत प्राणियो का विनाश वाला उसका वचन सुनकर सारथी स कहा-

जइ मज्झ कारण एए हम्मन्ति सुबहू जीवा ।
न मे एय तु निस्सेस परलोए भविस्सइ ।।

दूसरो को उपदेश देने की क्या पद्धित है, यह भगवान् नेमिनाथ के चरित्र से समझिये । भगवान् तीन ज्ञान के स्वामी थे, फिर भी ससार के लोगो को उपदेश देने के लिए उन जीवो की हिंसा का कारण अपने आपको माना है । भगवान् यह कह सकते थे कि मैं मास नही खाता हूँ, अत इन जीवो की हिंसा का दोष मुझ पर नही लग सकता है । ऐसा न कहकर सरथी के कहने पर उन जीवो की हिंसा का कारण अपने आपको स्वीकार कर लिया । आज हर वात मे वनियापन दिखाया जाता है । अपने आपको निर्दोष सावित करने के लिए दूसरो पर दोषारोपण कर दिया जाता है । यह बडी भारी कमजोरी है ।

क्या भगवान् अरिष्टनेमि के भक्तो का यह लक्षण हो सकता है कि वे अपना दोष दूसरो पर डाल दें । जिनकी हम मोहनगारो कह कर स्तुति कर रहे हैं, वे पशु-पक्षियो की हिंसा अपने सिर लेकर कह रहे हैं कि यह हिंसा परलोक मे नि श्रेयस साधक नही हो सक्ती । अफसोस है कि आज के बहुत से लोगो को तो पाप क्या है, इसका भी पता नही है ।

जो पाप ही को नही जानता, उसे पाप का भय कब हो सकता है ? लोकलाज के भय से पाप न करना और दया धर्म से प्रेरित होकर पाप न करने मे बडा अन्तर है । यदि धर्म-बुद्धि से अनुप्राणित होकर पाप न किया जाय तो ससार सुखी हो जाय ।

पाप का स्वरूप समझने की आपकी उत्सुकता बढ रही होगी । मान लीजिये, आप किसी बैल गाडी मे बैठे हैं। चलते-चलते गाडी रुक जाय तो आप ख्याल करेंगे कि गाडी मे कुछ वस्तु अटक गई है जिसमे गाडी रुकी है। इसी प्रकार हमारी व दूसरे की जीवन-नौका चलते-चलते जहा रुक जाय, वहा समझ लेना चाहिए कि पाप है । आत्मोन्नति की गाडी जब भी रुक जाय तब समझ जाना चाहिये कि यह पाप है।

क्या वे पशु-पक्षी भगवान् का विवाह रोक रहे थे, जिससे कि भगवान् को इतना गहरा विचार करना पडा ? नही । वे जीव विवाह मे बाधक न थे किन्तु भगवान् नेमिनाथ के हृदय मे भगवती दया माता निवास कर रही थी, जो उनको मूक पशुओ की करुण पुकार सुनने मे असमर्थ बना रही थी । आप लोगो को अपनी गाडी की रुकावट तो समझ मे आ सकती है मगर यह बात समझ मे नही आती । भगवान् इन बातो को समझते थे ? उन्होने सोचा कि मेरा विवाह शान्तिकारी तथा सुखकारी नही है । यदि विवाह शान्तिकारी या सुखकारी होता तो ये मूक पशु पीडा न पाते । जिस काम मे दीन-हीन गरीब लोग या पशु-पक्षी सताये जाय, वह काम किसी के लिए भी अच्छा या शुभकारी नही हो सकता ।

भगवान् कितने परदुःख-भजनहार थे। दूसरे प्राणियो की रक्षा के लिए भगवान् तो अपना विवाह तक रोकने के लिए तैयार हो गये और आज-कल के लोग दूसरे के दुःख की रत्ती भर भी परवाह नही करते। दूसरे के लिए अपनी जरासी मौजमजा छोडने को भी तैयार नही होते। भगवान् कहते है कि विवाह सुखमूलक है या दुःखमूलक, यह बात वाडी और पिंजडो मे बन्द किए हुए उन मूक प्राणियो से पूछिये। यदि पशु-पक्षियो के हमारे समान जबान होती और हमारी भाषा मे बोल सकते होते तो वे क्या जवाब देते ? इस बात का ख्याल करिये। हम अपने ऊपर से विचार कर सकते हैं कि आप हम ऐसी स्थिति मे पहुच जाय तो हम क्या करेंगे ? कोई जीव दुःख नही पसन्द करता। सब सुख चाहते हैं। आप लोगो का रहन-सहन पहले की अपेक्षा बदल कर हिंसापूर्ण होता जा रहा है। मैं नही कहता कि आप लोग सब कुछ छोड कर साधु बन जाय। और बन जाय तो मुझे खुशी ही होगी। मैं साधु बनने के लिए जोर नही दे रहा हूँ। मेरा तो यह कहना है कि आज आप जिस प्रकार का जीवन व्यतीत कर रहे है, उससे बेहतर जीवन व्यतीत कर सकते हैं। आप इस प्रकार जीवन निर्वाह करने का प्रयत्न कीजिए कि जिसमे दूसरो को तकलीफ न पहुचे या कम से कम पहुचे।

आप लोग तपस्या करते हैं। खासकर स्त्रिया बहुत तपस्या करती हैं। मैं पूछना चाहता हूँ कि आप पारणा किस दूध से करते हैं ? मोल लिए हुए दूध से अथवा घर पर रखी गाय-भैंस के दूध से ? यदि भगवान् आकर आप से जवाब तलब करे तो आप क्या उत्तर दे सकते हैं ? आप

कहेंगे कि यदि हम दूध का उपयोग करने मे लम्बा विचार करने लगें तो जीवन निर्वाह कठिन हो जाता है। तो क्या आपके पूर्वज इस बात को नही समझते थे? पहले के लोग जिस का घी दूध खाते थे, उसकी रक्षा करते थे। किन्तु आज के लोग खाना तो जानते हैं मगर रक्षा करना नही जानते। जैसे आज यह कह दिया जाता है कि हम क्या करे, हम तो पैसे देकर दूध मोल लाते हैं। गायें वाले गायों की क्या हालत करते हैं, इस से हमे क्या मतलब? उसी प्रकार भगवान् अरिष्टनेमि भी कह सकते थे कि बाडे मे बधे हुए पशुओ से क्या मतलब? मैंने कहा पशुओ को बधवाया है? मेरी भावना भी बन्धवाने की न थी। किंतु भगवान् ने ऐसा नही कहा। उस विवाह-यज्ञ के पाप के बोझ को भगवान् ने अपने सिर पर स्वीकार किया। उनके निमित्त से होने वाली हिंसा को उन्होने अपना पाप माना और उसमे अपना श्रेय नही देखा। आप लोग जो मोल का दूध पीते हो उसमें होने वाली हिंसा को आप अपनी हिंसा मानते हो या नही? यह हिंसा किसके निमित्त से हुई है, जरा विचार कीजिये।

सुना है कि मेहसाणा और हरियाणा की बडी-बडी भैंसें बम्बई मे दूध के लिए लाई गई हैं। घोसी लोग एक भैंस दो-दो से तीन-तीन सौ रुपये देकर खरीदते हैं। जब तक वह भैंस दूध देती है और दूध से खर्च आदि की पड़त ठीक बैठती है, तबतक रखी आती है, बाद मे कसाई के हाथ बेच दी जाती है। कसाईखानो मे भैंसें किस बुरी तरह कत्ल कर दी जाती हैं, इसका विचार करें तब पता लगे कि मोल का दूध खाना कितना हराम है! जब भैंसें दूध देती है तब घोसी लोग उन्हें तबेले मे बाध रखते हैं। बडी तग जगह

मे वन्द हवा मे वे वन्धी रहती हैं । कसाई के यहा जाते वक्त खुली हवा का अनुभव करके भैंसें वडी प्रसन्न होती है । उन्हे क्या पता कि उनकी यह प्रसन्नता कितनी देर तक टिकेगी ? जव भैंसें कसाईखाने मे पहुच जाती है, तव उन्हे जमीन पर पटक कर यन्त्र के द्वारा उनके स्तन मे रहा हुआ दूध बून्द-बून्द करके खीच लिया जाता है । दूध निकाल लेने के वाद उन्हे इस प्रकार पीटा जाता है, जिस प्रकार पापड का आटा पीटा जाता है । पीटते-पीटते जव सारी चर्वी उनके ऊपर आ जाती है तव उन्हे कत्ल कर दिया जाता है । उनके कत्ल होने का दृश्य यदि आप लोग देख लें तो ज्ञात होगा कि आप के मोल के दूध के पीछे क्या-क्या अत्याचार होते हैं ?

आप जरा विचार करिये कि वे भैंसे बम्बई मे क्यो लाई गई थी ? क्या वे मोल का दूध खाने वालो के लिए नही लाई गई थी ? पैसा देकर दूध खरीदने से इस पाप से वचाव नही हो सकता । कोई जैन धर्म का अनुयायी पैसे का नाम लेकर अपना बचाव नही कर सकता और न जैनो के लिए यह उत्तर शोभनीय ही है ।

मैंने बादरा (बम्बई) आदि स्थानो के कत्लखानो की रोमाचकारी हकीकतें सुनी हैं । घाटकोपर (बम्बई) चातुर्मास मे मैंने पशुरक्षा पर बहुत उपदेश दिया था, जिस पर वहा जीवदया सस्था भी खुली है । आपके यहा कैसे चलता है, सो मुझे पता नही है । मोल के दूध मे अनेक अनर्थ भरे हैं । बीकानेर के एक माहेश्वरी भाई ने मुझे कहा था कि मोल का दूध पीने वाले लोगो के लिए पाली हुई

गायो को देखने से पता लगता है कि उनके नीचे बछडे नहीं होते। वे बच्चे कहा चले जाते है ? गायो के मालिक बछडो को जन्मते ही जगल मे छोड आते हैं। वे सोचते हैं, यदि बछड़ा जिन्दा रहेगा तो दूध चूसेगा। जिस दूध के लिए ऐसे अनर्थ और पाप होते हैं, उसके पीने मे तो पाप नही और जिसमे गायो की रक्षा, पालना, पोषरा, सार-सम्भाल होती है, उसके पीने मे पाप होता है, ऐसी श्रद्धा कैसे बैठ गई ? किसने ऐसा धम बताया, समझ मे नही आता।

शास्त्र मे श्रावको के घर पशु होने का जिक्र है। पशुओ के साथ जैन श्रावक का कैसा वर्ताव होना चाहिए, इसके लिए शास्त्र मे कहा है— श्रावक वध, बध, छविच्छेद, अतिचार और भत्तपानी विच्छेद" इन पाच बातो से बचकर पशुओ का पालन पोषरा करे। श्रावक किसी जानवर को खसी नही करता, न कराता है। किसी जानवर को गाढे बधन से नहीं बाधता। किसी पर अधिक बोझा नही लादता। वह न किसी को मारता पीटता और न चारा पानी देने मे भूल या देरी ही करता है। भक्त-पानी का अन्तराय भी नही करता। श्रावको के लिए शास्त्र मे यह विधान है। किन्तु आज के लोग पशुपालन का त्याग कर के इस झझट से बच रहे हैं और साथ मे यह भी समझते हैं कि पाप से भी बच रहे हैं। वास्तव मे इस पाप से नहीं बचा जा सकता। पाप से बचाव तब हो सकता है, जब मोल का दूध दही मावा आदि खाना छोड दिया जाय।

भगवान् नेमिनाथ जैसे समथ व्यक्ति धर्म के लिए पशु पक्षियो की हिंसा अपने सिर लेकर विवाह करना तक छोड देते हैं तो क्या आप दूध दही के लिए मारे जाने वाले पशुओं

की रक्षा के लिए मोल का दूध दही खाना नही छोड सकते ? घी दूध खाना ही है तो पशु-रक्षा करनी ही चाहिए। आज तो घर मे गाय रखने तक की जगह नही होती। मोटर तागे आदि रखने के लिए जगह हो सकती है मगर गाय के लिए जगह नही हो सकती।

श्रावक निरारम्भी निष्परिग्रही नही हो सकता किन्तु महापरिग्रही भी नही हो सकता। वह अल्पारम्भी, अल्प परिग्रही होता है। श्रावक अपना जीवन इस प्रकार की चीजो से चलाता है जिनके निर्माण मे कम से कम पाप हो ? जिन चीजो मे अधिक पाप होता है उनका उपयोग श्रावक नही करता। मोल के घी दूध मे अल्प पाप है या रक्षा करके घर की पाली हुई गायो के घी दूध मे ? घर की रखी हुई गायो के घी दूध मे अल्प पाप है।

भगवान् अरिष्टनेमि ने यह भी विचार किया कि जिस वश मे मैं जन्मा हूँ उस मे इस प्रकार के पाप हो, यह कैसे सहा जाय ? यदि पाप के भार को कम न किया जाय तो मेरा आलस्य गिना जायगा। मेरे विवाह के निमित्त इन, दीन-हीन प्राणियो के गले पर छुरी चलाई जायगी ! अहो विवाह कितना दु खदायी है ! सारथी से कहा इन सब जीवो को छोड दो। भगवान् की यह आज्ञा सुनकर सारथी कुछ सकुचाया। पुन भगवान् ने कहा- हे सारथी ! डरते क्या हो ? मैं आज्ञा देता हूँ कि इन जीवो को छोड दो।

सारथी ने उन जीवो को छोड दिया। छुटकारा पाकर आसमान मे उडते हुए या जगल की ओर भागते हुए उन जीवो को कितना आनद आया होगा, इसका अनुमान आप

भी लगा सकते हो । कोई आदमी जेलखाने मे बन्द हो तो जेल से छूटने पर उसे कितना आनन्द होता है ? पिंजडो मे बन्द किये हुए वे जीव तो मौत के मुख से बचे थे । उनके आनन्द का क्या कहना ? किसी मरते हुए व्यक्ति को एक पुरुष तो राज्यदान करने लगे और दूसरा जीवनदान । वह मरणासन्न व्यक्ति किस दान को पसन्द करेगा ? जीवनदान को ही वह चाहेगा । हमारे शास्त्रों मे इसीलिए कहा है—

दाणाण सेट्ठ अभयप्पयाण

सब दानो मे अभयदान सर्वश्रेष्ठ है । यह बात शास्त्र, कुरान, पुरान से ही सिद्ध नही है मगर स्वानुभव से भी सिद्ध है । आपसे भी यदि कोई राजा यह कहे कि मै धन देता हूँ और दूसरा कोई कहे कि मैं जीवनदान देता हूँ तो आप जीवनदान ही पसन्द करोगे । कारण कि जीवन न रहा तो धन किस काम का ? जीवन के पीछे धन है । यह बात एक दृष्टात से समझाता हूँ ।

एक राजा के चार रानिया थी । अपने-अपने पद के अनुसार चारों ही राजा को प्रिय थी । राजा ने सोचा कि इन चारो मे कौन अधिक बुद्धिमती है, इसका निर्णय करना चाहिए और उसी पर ज्यादा प्रेम भी रखना चाहिए । यद्यपि मुझे चारो रानिया प्रिय हैं तथापि गुण की अवहेलना करना ठीक नही है । गुणानुसार कद्र होना ही चाहिए । गुणो की तरह रानियो का विचाव होता है । यह स्वभाविक बात है, अत सबसे बुद्धिमती कौन है, इसका निर्णय करना चाहिए ।

परीक्षा करने के लिए राजा समय की प्रतीक्षा करता रहा। योगानुयोग से परीक्षा का समय निकट आ गया। एक दिन शूली की सजा पाये हुए एक अपराधी को शूली पर चढाने के लिए ले जाया जा रहा था। उस अपराधी को स्नान कराया गया था। उसके आगे बाजे बजाये जा रहे थे। उसके साथ अनेक लोग कोतवाल सिपाही आदि थे। मगर वह अकेला रोता हुआ जा रहा था। यह दृश्य रानियो ने देखा, और देखकर दासियो से पूछा कि इतने अच्छे ड्रेस मे बाजे-गाजे के साथ जाता हुआ यह आदमी रो क्यो रहा है? दासियो ने कहा कि यह शूली का अपराधी है। थोडी देर मे इसकी जीवन लीला समाप्त होने वाली है, अत मौत के भय से यह रो रहा है।

आजकल फासी दी जाती है। पहले शूली दी जाती थी। लोहे के एक तीखे शूल पर आदमी को बिठा दिया जाता था। वह शूल मस्तक मे आर पार निकल जाता था।

रानियो ने पूछा कि क्या कोई इस पर दया नही कर सकता? दासियो ने कहा कि राज-आज्ञा के विरुद्ध आचरण करने की किसी की हिम्मत नही हो सकती है। सब ने सोचा, इस बेचारे का कुछ न कुछ भला करना चाहिए।

पहिली रानी राजा के पास गई। जाकर कहा, मैं आप से एक वरदान मागती हूँ, वह आज पूरा करना चाहती हूँ। राजा ने कहा, माग लो वरदान और मेरा बोझ हलका कर दो। रानी ने एक दिन के लिए उस शूली की सजा पाये हुए व्यक्ति को माग लिया। उसे खूब खिलाया पिलाया और एक हजार मोहरे भेंट मे दी। रात को वह सो गया मगर शूली की याद से उसे नीद नही आ रही थी। इन

मोहरों का क्या उपयोग है जब कि मैं खुद ही न रहूँगा ? दूसरे दिन दूसरी रानी ने भी उसे एक दिन अपने यहाँ रख कर दस हजार मोहरें भेंट दी। तीसरी रानी ने एक लाख मोहरें दी। इस प्रकार उसके पास तीसरे दिन एक लाख ग्यारह हजार दीनारें थी किन्तु उसका दिल शूली की सजा के स्मरण मात्र से बड़ा दुःखी था। चौथी रानी ने विचार किया कि मुझे भी इस बेचारे के दुःख में कुछ हिस्सा बटाना चाहिए।

मृत्युघण्ट बज रहा हो, उस समय यदि कोई मुझे कितना भी धन दौलत दे तो वह मेरे लिए किस काम का हो सकता है, यह सोचकर रानी ने उसकी शूली माफ कराने का निर्णय किया। राजा की इजाजत लेकर रानी ने उस सजायाफ्ता व्यक्ति को अपने पास बुलाया। बुलाकर उसे पूछा कि जैसे अन्य रानियों ने तुझे एक एक दिन रखकर मोहर भेंट दी हैं, वैसे मैं भी एक दिन रखकर तुझे दस लाख मोहरें दे दूं अथवा तेरी यह सजा माफ करवा दूं ? हाथ जोड़कर चोर कहने लगा, भगवति ! मोहरें लेकर मैं क्या करूं ? यदि आप मेरी सजा माफ करा दें तो ये एक लाख ग्यारह हजार मोहरें भी आपको देने के लिए तैयार हूँ। मुझे जीवनदान चाहिए, धन नहीं चाहिए। उसकी बातें सुनकर रानी ने निश्चय कर लिया कि यह आदमी मोहरों की अपेक्षा जीवन को बहुमूल्य समझता है।

आज आप लोग दमड़ी के लिए जीवन नष्ट कर रहे हो। एक भव का जीवन ही नहीं किन्तु अनेक भवों के जीवन को बिगाड़ रहे हो। आप अपने कामों की तरफ

निगाह करिये । क्या ऐसे कामो के चिकने सस्कारो से अनेक भव नष्ट नही होते ? अत प्रथम अपनी आत्मा को अभय-दान दीजिये । स्वहिंसा को रोकिये ।

रानी ने चोर मे कह दिया कि तेरी शूली माफ है । चोर बडा प्रसन्न हुआ। चोर की प्रसन्नता की कल्पना कीजिए कि वह कितनी अपार होगी ? चोर अपने घर चला गया किन्तु रानियो मे आपस मे झगडा हो गया कि किसने चोर का अधिक उपकार किया ? एक एक दिन रखकर मोहरें भेंट देने वाली तीनो रानिया एक तरफ हो गई और कहने लगी कि चौथी रानी ने चोर को कुछ भी दिए विना यो ही टरका दिया । चौथी रानी बोली कि इस प्रकार आपस मे वाद-विवाद करने से बात का निर्णय नही आयेगा । अत किसी तीसरे व्यक्ति को मध्यस्थ बना लिया जाय । यह बात सबने स्वीकार करली । राजा को मध्यस्थ बनाकर सब अपना-अपना पक्ष उसके सामने रखने लगी ?

पहली रानी ने कहा कि मैंने एक दिन के लिए चोर को सजा से बचा कर उसके जीवन को बचाने की शुरूआत की है । दूसरी ने कहा, मैंने दस हजार मोहरें दी हैं । तीसरी ने कहा, मैंने एक लाख मोहरें दी हैं । हम तीनो ने अपनी शक्ति के अनुसार देकर इसका कुछ उपकार किया है । मगर यह चौथी रानी तो कुछ दिए बगैर कोरी बातें करके साफ निकल गई है, फिर भी अपने काम को हमारी अपेक्षा श्रेष्ठ मानती है । आप फैसला कीजिये कि किसका काम अधिक उत्तम है ? राजा ने सोचा कि यदि मैं किसी के पक्ष मे न्याय दे दूंगा तो मेरा पक्ष-पात समझेंगी और इनके आपस मे भी

झगडा हो जायगा। वह चोर जीवित ही है। उसे बुलाकर पूछ लिया जाय। राजा ने रानियो से कहा कि मेरी अपेक्षा इस विषय मे वह चोर अच्छा न्याय दे सकेगा क्योकि वह भुक्तभोगी है और उसकी आत्मा जानती है कि किसने उस पर अधिक उपकार किया है। राजा ने चोर को बुलवा लिया और चारो रानियो का पक्ष-समर्थन उसके सामने रख दिया, "हे चोर ! ईमानदारी से कहना कि इन चारो रानियों ने तेरे पर जो-जो उपकार किये हैं, उनमे सबसे अधिक उपकार किसका और कौनसा है ? झूठ मत बोलना।" चोर ने कहा, 'राजन् ! उपकार तो इन तीनो रानियो ने भी किया है जिसे मैं जीवन भर नही भूल सकता किन्तु चौथी रानी के द्वारा किया गया उपकार सबसे महान् है। इसने मुझे जीवन-दान दिया है। इसके उपकार का बदला मैं अनेक जन्मो मे भी नही चुका सकता। यह तो साक्षात् भगवती है। दया की अवतार है।' राजा ने कहा, तू पक्षपात से तो नहीं कह रहा है ? इसने कुछ भी नहीं दिया, फिर भी इसका सबसे अधिक उपकार बता रहा है। चोर ने कहा-महाराज, मैं ठीक कह रहा हूँ। मेरे कथन मे पक्षपात नही है किंतु निरी सच्चाई है। इस चौथी रानी ने मुझे कुछ नही दिया है मगर फिर भी सब कुछ दे डाला है। इसने जो दिया है, वह मिले बिना जो कुछ इन तीनो ने दिया है, वह कैसे सार्थक हो सकता था ? दूसरी बात-इनकी दी हुई मोहरें पास होने पर भी मुझे यह महान् भय सताता रहा कि प्रात काल शूली पर चढना पडेगा और जीवन से हाथ धोने होंगे। इस चतुर्थ महारानी ने मेरा सारा भय मिटा दिया और मुझे निर्भय बना दिया है। सब कुछ आत्मा के पीछे प्रिय लगता है। आत्मा शरीर से अलग हो जाय तो सम्पत्ति किस काम की रहे ?

चोर का निर्णय सुनकर पहली तीनो रानियो का पहले तो मुह उतर गया किन्तु वे कुलवती थी, अत समझ गई और इस बात को मान लिया कि जीवनदान सब दानो मे श्रेष्ठ है, अमूल्य है । राजा ने कहा, यदि यह बात ठीक है तो तुम सब मे यह चौथी रानी अधिक बुद्धिमती सिद्ध हुई और इस नाते यदि इसे मैं पटरानी बनाऊ और घर की नायिका कायम कर दू तो यह मेरी भूल न होगी । सबने उसे बुद्धिमती और पटरानी स्वीकार कर लिया ।

चौथी रानी ने कहा, मेरे पटरानी बनने से यदि किसी को भय हो तो मैं सबकी सेविका बन कर ही रहना चाहती हूँ । किसी प्रकार का कलह पैदा करके अथवा आप लोगो को दुख देकर मैं पटरानी होना पसन्द नही करती । तीनो ने कहा, हमे तुम्हारी तरफ से न तो भय है और न दुख । आपकी अक्ल के सामने हम तुच्छ हैं । आप पटरानी होने लायक हैं ।

मतलब यह है कि अभयदान सब दानो मे श्रेष्ठ दान है । अभयदान कब दिया जाता है, इस पर विचार करिये । आप पाच रुपये मे बकरा खरीद कर उसे अभयदान दो अथवा किसी अन्य जीव को मरण से बचा कर उसे अभय-दान दो, यह ठीक है । किन्तु पहले आप अपने खुद के लिए विचार करिये कि आप स्वय अभय अथवा निर्भय हैं या नही ? भगवान् नेमिनाथ के समान आपने अपनी आत्मा को निर्भय बनाया है या नही ? भगवान् उन मूक पशुओ को बाडे से छुडाकर शादी कर सकते थे ? किन्तु उन्होने ऐसा न करके "तोरण से रथ फेर लिया" सो सदा के लिए फेर

ही लिया । अपनी आत्मा को अभयदान देने के लिए भगवान् का यह दूसरा कदम था । पहला कदम जीवो को छुडाना था। जब कि विवाह दु ख का मूल है, विवाह करके आत्मा को भय मे डालना भगवान् ने उचित नही समझा । मुकुट के सिवाय सब आभूषण सारथी को दे दिये और स्वय वापस लौट गये । कहावत है—

वणिक्तुष्ट देत हस्ततालो ।

वनिया प्रसन्न हो जाय तो एक दो और जमा दे मगर कुछ देने मे बहुत सकोच होता है । भगवान् वनिये नहीं थे जो ऐसा करते । उन्होने मुकुट के सिवाय सब कुछ सारथी को दे डाला । श्री कृष्ण के भण्डार के आभूषण कितने बहु-मूल्य होगें, जरा ख्याल करियेगा ।

राजेमती इनके साथ विवाह करने की इच्छा रखती थी । अब इनके लौट जाने से उसकी क्या दशा हुई होगी ? उसने सोचा कि भगवान् मुझे परमार्थ का मार्ग दिखाने आये थे । वे मेरे मोहनगारे हैं । आप लोग केवल गीत गाकर मोहनगारो कहत हैं मगर राजेमती ने सच्चा मोहनगारा बनाया था । कोरे गीत गाने से कुछ नही होता । गीत दो तरह से गाये जाते हैं । विवाह आदि प्रसग पर वर की माता भी गीत गाती है और पडौसी स्त्रियाँ भी । इन दोनो गीत गानेवालियो मे कोई अन्तर है या नही ? पडौसी स्त्रियाँ गीत गाकर लेती हैं । माता गीत गाकर देती है । यदि मा भी गीत गाकर लेने लगे तो वह माता न रहेगी, पडौसिन बन जायगी । उसका माता का अधिकार न रहेगा । आप भी परमात्मा के गीत गायें तो अधिकारी बनकर गाइये ।

लेने को भावना मत रखिये, अन्यथा अधिकार चला जायगा।

विचार करने से मालूम होता है कि भगवान् नेमिनाथ से राजेमती एक कदम आगे थी। नेमिनाथ तोरण से वापस लौट गये थे। अत राजेमती चाहती तो उनके हजार अवगुण निकाल सकती थी। वह कह सकती थी कि वरराज वन कर आये और वापस लौट गये। मुझ से पूछा तक नही। यदि विवाह न करना था तो बीद वन कर आये ही क्यो थे ? दीक्षा ही लेनी थी तो यह ढोग क्यो रचा ? मैं उनकी अर्धाङ्गिनी वन चुकी थी तो दीक्षा के लिए मेरी सम्मति लेनी आवश्यक थी आदि।

आज के आलोचक विद्वान् कह सकते हैं कि नेमिनाथ तीर्थंकर थे, फिर भी उनके काम कैसे हैं कि तोरण पर आकर वापस लौट गये। एक स्त्री का जीवन वरवाद कर दिया। विद्वानो की आलोचना पर विचार करने के पहले राजेमती क्या कहती है ? एक सखी ने कहा, अच्छा हुआ जो नेमजी चले गये। वास्तव मे उनकी और तुम्हारी जोडी भी ठीक न थी। वे काले हैं तुम गौरी हो। मुझे यह सम्बन्ध पहले से ही नापसन्द था। मगर मैं कुछ बोल नही सकती थी। वे जैसे ऊपर से काले हैं वैसे हृदय से भी काले है। बीद वन कर आना, छत्र चवर धारण करना, फिर भी वापस लौट जाना। यह हृदय का कितना कालापन है ? अच्छा हुआ कि विवाह करने के पूर्व ही चले गये ? नाक कटी तो उन लोगो की जो वरात मे सजधज कर आये थे। अपना क्या नुकसान हुआ ? राजेमती ! तुम तो खुशी मनाओ। तुम को कोई दूसरा उससे भी अधिक योग्य वर मिल जायगा ?

सखी की ऐसी बातें सुनकर राजेमती ने क्या उत्तर

दिया, वह सुनिये । आजकल विधवा-विवाह की एक लहर चल पडी है । विधवाए तो इस विषय मे कुछ नही कहती, केवल नवयुवक लोग उनके विवाह कर लेने की बातें और दलीलें दिया करते हैं । जरा विचारने की बात है कि क्या विधवा-विवाह होने से ही सुधार हो जायगा ? जो लोग दूसरो का सुधार करना चहते हैं, वे पहले अपना सुधार करलें । पहले खुद का रहन-सहन देखना चाहिए कि वह कैसा है और उसमे सुधार की क्या गु जाइश है ?

राजेमती की सखी ने उसे दूसरा विवाह कर लेने की बात कही थी मगर उसकी लगन कैसी है, यह देखिये । सखी से कहा— हे सखी, तू चुप रह । ऐसा मत कह । वह भगवान् काला नही है किन्तु आकाश के समान श्याम वर्ण होने पर भी अनन्त है । ऊपर से चमडी चाहे सावली हो मगर उसके भाव इतने निर्मल और उज्ज्वल हैं कि अन्यत्र कहीं देखने को नही मिल सकते । उनके विषय मे ऐसी बेहूदा बातें मैं नही सुन सकती । उनके चरित्र की तरफ जरा नजर कर । वे मुझे छोड कर किसी अन्य स्त्री से विवाह करने के लिए नही गये हैं किन्तु दीन हीन पशुओं पर करुणा भाव लाकर, उन्हे बन्धनो से छुडाकर यादवो मे करुणा बुद्धि जगाकर करुणासागर बनने के लिए गये हैं ।

राजेमती की बात सुनकर उसकी सखी दग रह गई । कहने लगी— मैंने तो तुम्हे अच्छे लगने के लिए ही उक्त शब्द कहे थे । आज भी लोग दूसरो को अच्छा लगने के लिए सत्य की घात कर देते हैं । किन्तु ज्ञानीजन दूसरा को अच्छा लगने के लिए भी सत्य का खून नही करते । वे

जानते हैं कि–

सत्यमेव जयति नानृतम् ।

सत्य की ही जय होती है । झूठ की विजय नही होती । शास्त्र मे भी कहा है कि– "सच्च भगवओ" अर्थात् सत्य भगवान् है । वेदान्त मे भी कहा है– "सत्येन लभ्यते ह्यय आत्मा" अर्थात् यह आत्मा सत्य के जरिये ही परमात्मा मे मिल सकता है । सत्य से तप होगा । सत्य से सम्यग्ज्ञान होगा । सम्यग्ज्ञान से ब्रह्मचर्य होगा । इन सब से परमात्मा की भेंट होगी । राजेमती सत्य प्रकृति से नाता रखती थी । अत सखी से कह दिया कि ऐसे वचन मत बोल ।

दूसरी सखी ने कहा– यह मूर्ख है जो भगवान् की निन्दा करती है । निन्दा करने से क्या प्रयोजन सिद्ध होता है ? लेकिन मैं तुम से यह पूछना चाहती हूँ कि थोडी देर पहले तुम्हारा क्या विचार था ? राजेमती ने उत्तर दिया कि भगवान् की पत्नी वनने का । सखी ने कहा–तव इतनी सी देर मे वैराग्य कहा से आ गया ? क्षणिक आवेश मे आकर वैराग्य की बातें करती हो किन्तु भविष्य का भी जरा ख्याल करो । अभी तो वाजी हाथ मे है । अभी तुम्हे विवाह का दाग भी नही लगा है । माता–पिता से कहने पर दूसरे वर के साथ इसी मुहूर्त मे विवाह करा देगे । आप जैसी कुलवन्ती के लिए वर की क्या कमी है ?

राजेमती ने उत्तर दिया कि यह वात ठीक है कि मैं भगवान् की पत्नी वनना चाहती थी । जो सच्ची वात थी तुझ से कही थी । मैं झूठ बोलना अच्छा नही समझती । सत्य से विप भी अमृत हो जाता है और झूठ से अमृत भी

विप। मैं दिल मे उनकी पत्नी वन चुकी हूँ। भले ही ऊपर से विवाह सस्कार नही हुआ है। मैं समीप से सायुज्य मे पहुच चुकी हूँ। अत अब उनका काम, उनका धर्म और उनका मार्ग मेरा काम, मेरा धर्म और मेरा मार्ग होगा। जिस प्रकार लवण की पुतली समुद्र मे स्नान करने जाती है और उसी मे समा जाती है, उसी प्रकार मै भी भगवान् मे समा चुकी हूँ। पहले मैं पति शब्द का अर्थ कुछ और समझती थी किन्तु अब जान गई हूँ कि "पुनातीति पति" अर्थात् जो पवित्र वनाये वह पति है। भगवान् ने मुझे पावन बना दिया है। विवाह करने पर एक को सम्मान देना पडता है और अन्यो की उपेक्षा करनी पडती है। ऐसा न हो तो वह विवाह ही नही है। मैं भी भगवान् को सम्मान देती हूँ जिन्होंने जगत् की सब स्त्रियो को माता और वहिन बना लिया है। मेरी भगवान् से जो लगन लगी है, वह लगी ही रहेगी। वह लगन अब नही टूट सकती। चाहे मेरे माता-पिता मुझे पहाड से गिरा दें, विषपान करा दें अथवा अन्य कुछ कर दें किन्तु भगवान् के साथ जो लगन लगी है, वह नही बदल सकती।

विवाह आप लोगो का भी हुआ है। जिसके साथ विवाह हुआ है, उसके साथ ऐसी लगन लगी है या नही? विवाह करके स्त्री किसी परपुरुष पर नजर न डाले और पुरुष परस्त्री पर, यही सवक भगवान् नेमिनाथ और राजेमती के चरित्र से लेना चाहिए। तभी आप भगवान् के श्रावक कहला सकते हैं। ऐसा हो तभी आनन्द है।

राजेमती दीक्षा लेकर भगवान् स ५४ दिन पहले मुक्ति

पुरी मे पहुची हैं । कवि कहते है कि राजेमती की मुक्ति-सुन्दरो से प्रतिस्पर्धा थी । राजेमती कहती है, अयि मुक्ति-सुन्दरी ! तू मेरे पति को अपने पास पहले बुलाना चाहती थी मगर यहाँ भी मैं पहले आ पहुची हूँ । अब देखती हूँ कि मेरे पति यहा से मुझे छोडकर कैसे जाते हैं ?

सच्चा विवाह करने वाले भगवान् अरिष्टनेमि और राजेमती अन्त तक हृदय मे बने रहे तो कल्याण है ।

राजकोट
१२—७—३६ का
व्याख्यान
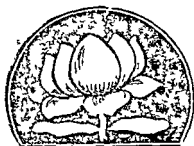
८ : आत्म-विभ्रम

"जीव रे तू पार्श्व जिनेश्वर वन्द "

यह तेइसवे तीर्थंकर भगवान् श्री पार्श्वनाथ की प्रार्थना है। इस प्रार्थना मे यह बात बताई गई है कि आत्मा अपना निज स्वरूप किस प्रकार भूल गया है और पुन उसे कैसे जान सकता है ? इस पर यह प्रश्न उठता है, जब कि आत्मा चिदानद स्वरूप है तब अपने रूप को क्यो भूल गया। पुन स्वरूप का भान किस प्रकार हो सकता है ? यह प्रश्न बडा कठिन जान पडता है किन्तु हृदय के कपाट खोलकर विचार करने से सरल बन जाता है।

आत्मा भ्रम में पडा हुआ है, यह बात सत्य है मगर उस भ्रम को वह स्वय ही मिटा सकता है। यदि आत्मा उद्योग करे तो भ्रम मिटाकर अपने स्वरूप को आसानी से जान सकता है। आत्मा भ्रम मे किस प्रकार पडा हुआ है, इसके लिए इस प्रार्थना मे कहा गया है—

> सप अंधेरे रासडी रे, सूने घर बेताल।
> त्यो मूरख आतम विषे, माया जग भ्रम जाल ॥

अंधेरे मे पडे हुए रस्से के टुकडे को देखकर सांप का

भान हो जाता है । इस काल्पनिक साप को देखकर लोग डर भी जाते हैं । यद्यपि वह साप नही है, रस्सी है, फिर भी मनुष्य अपनी कल्पना से उसे सॉप मान कर कल्पना से ही भयभीत भी होता है । किसी के भ्रमवश किसी वस्तु को अन्यथा रूप मे मान लेने से वह वस्तु बदल नही जाती । वस्तु तो जैसी होगी वैसी ही रहेगी । किसी ने कल्पना से रस्सी को साप मान लिया, इससे रस्सी साप नही बन जाती है । केवल कल्पना से मनुष्य अन्यथा मानता है और कल्पना से ही भय भी पाता है । कल्पना भ्रम से पैदा होती है । जब बुद्धि मे फितूर होता है तब वास्तविक पदार्थ उल्टा मालूम होने लगता है । यह भ्रम ज्ञानरूपी प्रकाश से मिट सकता है । ज्ञान प्रकाश है, अज्ञान अधकार है ।

कल्पना से भय किस प्रकार पैदा कर लिया जाता है और वापस किस प्रकार दूर किया जाता है, इस बात का मुझे खुद को भी अनुभव है । एकदा दक्षिण देश मे घोड-नदी नामक ग्राम मे रात के समय बैठा हुआ था । अन्य लोग भी बैठे थे । मैं छाया मे बैठा हुआ था । कुछ लोग खुले मे भी बैठे थे । हम सब ज्ञान की बाते कर रहे थे । छत पर चॉदनी से कुछ छाया पड रही थी । उस छत मे एक दरार पडी हुई थी । उस छाया मे वह ऐसी मालूम हुई मानो साप हो । उपस्थित लोगो ने विचार किया कि यदि यह साप रात को यही पर पडा रह गया तो सम्भव है किसी को हानि पहुचाये ? यह सोचकर सब लोग उस साप को पकडने का प्रबन्ध करने लगे । कोई सांप पकडने का लकडी का चीपिया ले आया तो कोई प्रकाश के लिये दीपक । जब दीपक लेकर उसके पास आये तो सब लोग खिलखिला

कर हसने लगे और एक दूसरे को कहने लगे कि किसने इसे साप बताया? यह तो छत मे पटी हुई दरार है।

इस प्रकार उस दरार (लम्बा छेद) के विषय में जो भ्रम पैदा हुआ था, वह प्रकाश के लाने से दूर हो गया। यदि प्रकाश न लाया जाता तो वह भ्रम दूर नही होता। जिस प्रकार साप के विषय मे झूठा ज्ञान हो गया था, भ्रम हो गया था, इसी प्रकार ससार के विषय मे भ्रम फल रहा है। हमारे भ्रम से न तो आत्मा जड हो सकता है और न जड पदार्थ चैतन्य। लेकिन आत्मा भ्रम से गडबड मे पडा हुआ है और इसी कारण जन्म-मरण के चक्कर में फसा हुआ है।

मैंने श्री शकराचार्य कृत वेदान्त भाष्य देखा है। उसमे मुझे जैन तत्व का ही प्रतिपादन मालूम पडा। मैं यह देख कर इस निर्णय पर पहुचा हूँ कि जैन दर्शन के गहरे अध्ययन की सहायता के बिना वस्तु का ठीक प्रतिपादन हो ही नही सकता। यदि कोई शान्ति से मेरे पास बैठ कर यह बात समझना चाहे कि किस प्रकार वेदान्त भाष्य मे जैन दर्शन का समावेश है, तो मैं बडी खुशी से समझा सकता हूँ।

वेदान्ती कहते है कि– 'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति' अर्थात् एक ब्रह्म ही है दूसरा कुछ भी नही है। किन्तु भाष्य में कहा है कि–

> युष्मदस्मत्प्रत्यय गोचरयो विषय विषयिणो।
> तम प्रकाश विरुद्धस्वभावयो ॥ शांकर भाष्य ॥

अर्थाद् युष्मत् और अस्मद् प्रत्यय के विषयीभूत विषय और विषयी मे अन्धकार और प्रकाश के समान परस्पर विरोध है। पदार्थ और पदार्थ को जानने वाले मे परस्पर विरुद्ध स्वभाव है। ससार के सब पदाथ विषय है और इन को जानने वाला आत्मा विषयी है। इन दोनो मे परस्पर विरोध है। भाष्यकार का कथन है कि न तो युष्मद् अस्मद् हो सकता है और न अस्मद् युष्मद्। दोनो को अन्धकार और प्रकाशवत् भिन्न माना है। दोनो एक नही हो सकते। जैन धर्म भी ठीक यही बात कहता है कि जड और चैतन्य का स्वभाव और धर्म जुदा-जुदा है। न तो जड चैतन्य हो सकता है और न चैतन्य जड। इस प्रकार भाष्य का कथन जैन शास्त्र और जैन दशन के प्रतिकूल नही है किन्तु अनुकूल है-समर्थक है। इसके विपरीत वेदान्त-प्रतिपादित 'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति' के सिद्धात के प्रतिकूल पडता है। यदि ब्रह्म के सिवाय अन्य कुछ नही है तो युष्मद् और अस्मद् अन्धकार और प्रकाश, पदार्थ और पदार्थ को जानने वाला, एक हो जायँगे। ब्रह्म चैतन्य स्वरुप माना गया है। यदि दोनो पदाथ चैतन्य रूप हो, तब तो एक मे मिल सकते है। किन्तु यदि दोनो तम प्रकाशवत् भिन्न गुण वाले हो, तब एक मे कसे मिल सकते हैं ? अगर दोनो अलग-अलग रहते हैं तो "एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति" सिद्धान्त कहाँ रहा ? इस प्रकार विचार करने से सभी जगह जैन तत्व और जैन दर्शन की स्याद्वाद शैली मिलेगी। स्याद्वाद शैली विना वस्तु तत्व विवेचन ठीक नही हो सकता।

मतलब यह है कि आत्मा ने अपने भ्रम से ही जगत् पैदा कर रखा है। जिस तरह रस्सी मे साप की कल्पना

हुई उसी प्रकार मैं दुबला हूँ, मैं लगडा लूला हूँ आदि अनेक कल्पनाएँ की जाती हैं। विचार करने पर मालूम होगा कि आत्मा न दुबला है और न लगडा-लूला। दुबला और लगडा लूला शरीर है मगर भ्रमवश शरीर के धर्म आत्मा मे मानकर मनुष्य भयभीत या दुखी होता है। आत्मा और शरीर के गुण स्वभाव भिन्न-भिन्न हैं। अज्ञानवश जीव दोनो को एक मानता है और अनेक प्रकार का जाल रचता है। इस भ्रम को मिटाने के लिए तथा काल्पनिक जगत् बनाने से बचने के लिए प्रार्थना मे कहा गया है "जीव रे तू पार्श्व जिनेश्वर वद"। भगवद्भक्ति से सब प्रकार के भ्रम मिट जाते हैं। भ्रम मिटने पर दुख कभी नही हो सकता।

इसी बात को जैन सिद्धान्त के अनुसार देखें कि यह ससार भ्रम-कल्पना से ही बना हुआ है अथवा वास्तविक है? शास्त्र कहते हैं, व्यवहार दृष्टि से जगत् वास्तविक है और निश्चय दृष्टि से काल्पनिक। इस विषय का विशेष खुलासा उत्तराध्ययन सूत्र के बीसवें अध्ययन मे किया गया है।

महानिर्ग्रन्थ अध्ययन मे नाथ-अनाथ की व्याख्या की गई है और बताया गया है कि जीव भ्रमवश अपने को अनाथ मानता है और अभिमान से नाथ समझता है। वास्तव में वह न नाथ है और न अनाथ है। नाथ अनाथ का सच्चा स्वरूप बताकर राजा श्रेणिक का भ्रम मिटाया गया है। इसी को समझकर किसी बात का त्याग न करने पर भी केवल सच्ची समझ पैदा हो जाने के कारण राजा श्रेणिक ने तीर्थंकर गोत्र बाध लिया था। महानिर्ग्रन्थ और श्रेणिक का सवाद

ध्यानपूर्वक सुनने से उसका रहस्य ध्यान मे आयेगा । मैं अनाथी मुनि के चरण-रज के समान भी नही हूँ और आप भी श्रेणिक राजा के समान नही है । फिर भी उन मुनि की बातचीत कहने के लिए मुझे जैसे अपने आत्मा को तैयार करना होगा वैसे आपको भी कुछ तैयारी करनी होगी । जैसे उस चोर ने मुर्दे का पार्ट पूरा अदा किया था, वैसे आप को भी श्रेणिक का पार्ट अदा करना चाहिए । ऐसा करने पर ही इस कथा का रहस्य समझ मे आयेगा ।

राजा श्रेणिक के परिचय के लिए इस कथा मे कहा गया है—

पभूयरयणो राया सेणिओ मगहाहिवो ।
विहारजत्त निज्जाओ मडिकुच्छिसिचेइय ।२।

पहले पात्र का परिचय कराना आवश्यक होता है । श्रेणिक इस कथा मे प्रधान पात्र है । वह अनेक रत्नो का स्वामी था । श्रेणिक साधारण राजा नही था किन्तु मगध देश का अधिपति था ।

शास्त्र मे श्रेणिक को बिम्बसार भी कहा गया है । श्रेणिक की बुद्धिमत्ता के लिये कथा प्रसिद्ध है । श्रेणिक के पिता प्रसन्नचन्द्र के सौ पुत्र थे । पिता यह जानना चाहता था कि उसके पुत्रो मे सबसे अधिक बुद्धिमान कौन है ? परीक्षा करने के लिये प्रसन्नचन्द्र ने एक दिन कृत्रिम आग लगा दी और अपने पुत्रो से कहा कि आग लगी है, अत महलो मे से जो सार भूत चीजे हो, उन्हे बाहर निकाल डालो । पिता की आज्ञा पाते ही सब लडके अपनी अपनी रुचि के अनुसार

जिसे जो वस्तु अच्छी लगी, वह निकालने लगा। श्रेणिक ने घर मे से दुन्दुभी निकाली। दुन्दुभी को निकालते देख कर उसके सब भाई हसने लगे और कहने लगे कि यह कैसा आदमी है जो ऐसे अवसर पर ऐसी वस्तु बाहर निकाल रहा है ? नगारे के सिवा इसे कोई अच्छी वस्तु घर मे नही दिखाई दी, जो इसे निकालना पसन्द किया है। अब यह नगारा बजाया करेगा। मालूम होता है, यह ढोली है। खजाने मे रत्नादि न निकाल कर इसने यह दुन्दुभी निकाली है!

ऊपर की नजर मे श्रेणिक का यह काम बडा हल्का मालूम पडता था मगर उसके मर्म को कौन जाने ? राजा प्रसन्नचन्द्र इसका मर्म समझते थे। समझते और जानते हुए भी उस समय प्रसन्नचन्द्र ने श्रेणिक की प्रशसा करना उचित नहीं समझा, कारण निन्यानवे भाई एक तरफ थे और अकेला श्रेणिक एक तरफ। क्लेश हो जाने की सभावना थी। प्रसन्नचन्द्र ने पुत्रो से पूछा कि क्या बात है ? सबने कहा कि हमने अमुक-अमुक चीज निकाली है पर पिताजी हम सब बडे हैरान हैं कि आप के बुद्धिमान पुत्र श्रेणिक ने नगारा निकाला है। इससे बढकर कोई बहुमूल्य वस्तु आपके खजाने मे इसे नही मिली। वाद्य की क्या कमी है ? दस पाच रुपयो मे वाद्य मिल सकता है। यह निरा मूर्ख मालूम पडता है। प्रसन्नचन्द्र ने श्रेणिक की ओर नजर कर के कहा कि ये लोग तुम्हारे लिए क्या कह रहे हैं, सुनते हो ? श्रेणिक ने उत्तर दिया कि पिताजी! राजाओ को रत्नो की क्या कमी है ? यह नगारा राज्यचिह्न है। यदि यह जल जाय तो राज्यचिह्न जल जाता है और यदि यह बा

जाय तो सब कुछ बच गया समझना चाहिए। राज्यचिह्न के रह जाने से अनेक रत्न पैदा किए जा सकते हैं।

आजकल भी नगारे की बहुत रक्षा की जाती है। नगारे पर होशियार रक्षक रखे जाते हैं। यदि किसी राजा का नगाडा चला जाय तो उसकी हार मानी जाती है। उसका राजचिह्न चला जाता है।

श्रेणिक ने कहा कि राज्यचिह्न समझ कर इसकी रक्षा करना, मैंने सबसे जरूरी समझा है। श्रेणिक के भाई कहने लगे, यह मूर्खता है। युद्ध के समय यदि नगरा बजाया तो हमारी समझ मे आ सकता है कि मौके पर राज्यचिह्न बचा लिया किन्तु शातिकाल मे आग मे जलती वस्तुओ की रक्षा के वक्त नगाडा निकालना कोई बुद्धिमत्तापूर्ण काम नही है।

प्रसन्नचन्द श्रेणिक पर बहुत प्रसन्न हुए किन्तु प्रसन्नता बाहर न दिखाई। श्रेणिक को आख के इशारे से समझा दिया कि इस समय तू यहा से चला जा। श्रेणिक चला गया। बाहर रह कर उसने बहुत रत्न प्राप्त किये। प्रसन्नचन्द्र ने अन्त मे उसकी बुद्धिमत्ता से खुश होकर उसी को राज्यभार सौपा। श्रेणिक भेरी (दुन्दुभी-एक वाद्य विशेष) निकाल कर लाया था। भेरी शब्द का मागधी मे भम्बा या बिम्ब हो जाता है। श्रेणिक ने बिम्ब को ही सार माना था, अत उसका नाम बिम्बिसार भी है। घर से निकाल दिये जाने पर वह बहुत रत्न लाया था, अत वह बहुत रत्नो का स्वामी कहा गया।

अब श्रेणिक शब्द का अर्थ देखलें। कहते हैं, वह घर

जिसे आग लग चुकने लगी, वह निकालने लगा। श्रेणिक ने घर में से दुन्दुभी निकाली। दुन्दुभी को निकालते देख कर दूसरे सब भाई हंसने लगे और कहने लगे कि यह कैसा आदमी है जो इस अवसर पर ऐसी वस्तु बाहर निकाल रहा है? नगाड़े के सिवा इसे कोई अच्छी वस्तु घर में नहीं दिखाई दी, जो इसे निकालना पसन्द किया है। अब यह नगारा बजाया करेगा। मालूम होता है, यह ढोली है। खजाने में से माल न निकाल कर इसने यह दुन्दुभी निकाली है!

ऊपर की नजर से श्रेणिक का यह काम बड़ा हल्का मालूम पड़ता था मगर उसके मर्म को कौन जाने? राजा प्रसेनचन्द्र इसका मर्म समझते थे। समझते और जानते हुए भी उस समय प्रसेनचन्द्र ने श्रेणिक की प्रशंसा करना उचित नहीं समझा, कारण निन्यानवे भाई एक तरफ थे और अकेला श्रेणिक एक तरफ। कलह हो जाने की सम्भावना थी। प्रसेनचन्द्र ने पुत्रों से पूछा कि क्या बात है? सबने कहा कि हमने अमुक-अमुक चीज निकाली है पर पिताजी हम सब इससे हैरान हैं कि आप के बुद्धिमान पुत्र श्रेणिक ने नगारा निकाला है। इससे बढ़कर कोई बहुमूल्य वस्तु आपके खजाने में इसे नहीं मिली। बाजा की क्या कमी है? दस बीस रुपयों में बाजा मिल सकता है। यह निरा मूर्ख मालूम पड़ता है। प्रसेनचन्द्र ने श्रेणिक की ओर नजर कर के कहा कि ये लोग तुम्हारे लिए क्या कह रहे हैं, सुनते हो? श्रेणिक ने उत्तर दिया कि पिताजी! राजाओं को रत्नों की क्या कमी है? यह नगारा राज्यचिह्न है। यदि यह जल जाय तो राज्यचिह्न जल जाता है और यदि यह बच

जाय तो सब कुछ बच गया समझना चाहिए । राज्यचिह्न के रह जाने से अनेक रत्न पैदा किए जा सकते है ।

आजकल भी नगारे की बहुत रक्षा की जाती है । नगारे पर होशियार रक्षक रखे जाते है । यदि किसी राजा का नगाडा चला जाय तो उसकी हार मानी जाती है । उसका राजचिह्न चला जाता है ।

श्रेणिक ने कहा कि राज्यचिह्न समझ कर इसकी रक्षा करना, मैंने सबसे जरूरी समझा है । श्रेणिक के भाई कहने लगे, यह मूर्खता है । युद्ध के समय यदि नगरा बजाया तो हमारी समझ मे आ सकता है कि मौके पर राज्यचिह्न बचा लिया किन्तु शातिकाल मे आग मे जलती वस्तुओ की रक्षा के वक्त नगाडा निकालना कोई बुद्धिमत्तापूर्ण काम नही है ।

प्रसन्नचन्द श्रेणिक पर बहुत प्रसन्न हुए किन्तु प्रसन्नता बाहर न दिखाई । श्रेणिक को आख के इशारे से समझा दिया कि इस समय तू यहा से चला जा । श्रेणिक चला गया । बाहर रह कर उसने बहुत रत्न प्राप्त किये । प्रसन्नचन्द्र ने अन्त मे उसकी बुद्धिमत्ता से खुश होकर उसी को राज्यभार सौपा । श्रेणिक भेरी (दुन्दुभी-एक वाद्य विशेष) निकाल कर लाया था । भेरी शब्द का मागधी मे भम्बा या बिम्ब हो जाता है । श्रेणिक ने बिम्ब को ही सार माना था, अत उसका नाम बिम्बिसार भी है । घर से निकाल दिये जाने पर वह बहुत रत्न लाया था, अत वह बहुत रत्नो का स्वामी कहा गया ।

अब श्रेणिक शब्द का अर्थ देखने । कहते हैं, वह घर

ने छिन्न किया जाने पर भी गजसुकुमार ही रहा, ऊंचे पहाड़ पर ही रहा, नीचे नहीं गिरा। विपत्ति में पड़ जाने पर भी वह समान ही रहा—अखंड ही रहा, अतः शहीद कहलाया।

श्रीकृष्ण महाराज की सब सम्पदाओं से युक्त था मगर उसके पास ज्ञान-सम्पत्ति नहीं थी। आप लोगों को धन-धान्य सम्पदा प्रदान करने वाले और ज्ञान-सम्पदा प्रदान करने वाले में बड़ा कौन मालूम होता है? एक आदमी आपको धन देता है, घर देता है, सब कुछ देता है और दूसरा आपको आत्मा की पहिचान कराता है। इन दोनों में आपको कौन बड़ा लगता है? जो आत्मा की पहिचान कराता है और यह श्रद्धा पैदा कर देता है कि आत्मा और शरीर, तलवार और म्यान अलग-अलग हैं, उन महात्मा जगत् में बहुत थोड़े हैं। सम्पत्ति देने वालों से ये महात्मा कम उपकारक नहीं हैं, बहुत अधिक उपकारक हैं।

यदि आप लोगों को आत्मा और शरीर का तलवार और म्यान के समान पृथक्-पृथक् भान हो जाय तो क्या चाहिए? इस बात पर दृढ़ श्रद्धान हो जावे तो बेड़ा पार है। किन्तु दुःख है कि व्यवहार के समय ऐसा विश्वास कायम नहीं रहता। यदि कभी किसी वीर योद्धा के पास तलवार हो और उस समय यदि शत्रु उसके सामने आ जाय तो वह वीर तलवार को सम्भालेगा या म्यान को? यदि उसने उस समय तलवार न सम्भाल कर म्यान सम्भाला तो क्या वह वीर कहलायगा और शत्रु से अपनी रक्षा कर सकेगा? इसी प्रकार आप लोगों पर भी मान लो कोई आपद् आ जाय तो उस

समय आप म्यान के समान शरीर का बचाव करोगे अथवा तलवार के सामन आत्मा का ? शरीर को सम्भाला जाय पर उसमे निवास करने वाले आत्मदेव को न सम्भाला जाय तो यह कितनी मूर्खता की बात होगी ?

कामदेव श्रावक की परीक्षा करने के लिए एक देव पिशाच का रूप धारण कर हाथ मे तलवार लेकर आया और कहने लगा कि तू तेरा धर्म छोड दे, नही तो मैं तेरे शरीर के टुकडे-टुकडे कर डालू गा । यह सुनकर कामदेव किञ्चित् भी भयभीत न हुआ । शास्त्र कहते हैं कि पिशाच के शब्द सुनकर कामदेव श्रावक का एक रोम भी नही डिगा । उसे जरा भी भय या त्रास न हुआ । जरा विचार कीजिये कि कामदेव को भय क्यो नही हुआ ? क्या उसके पास सम्पत्ति नही थी, जिसका उसे मोह न था ? शास्त्र कहता है, उसके पास अठारह करोड सोनैया और साठ हजार गाये थी । वह श्रीमन्त और ठाठवाठ वाला था । पिशाच के शब्द सुनकर कामदेव हसता हुआ विचार कर रहा था कि हे भगवान् ! यदि मैंने धम और आत्मा को न जाना होता तथा तेरी शरण न पकडी होती तो आज मेरी क्या दशा होती ? इस कठोर परीक्षा मे मैं टिक सकता या नही ? परीक्षा उसी की होती है जो पाठशाला मे पढने जाता है । जो पाठशाला नही जाता, उसकी कौन परीक्षा करे ? कामदेव भगवान् का भक्त और श्रावक था, अत उसकी परीक्षा हुई है । वह भगवान् महावीर का धर्म अगीकार किया हुआ था, अत परीक्षा हुई । उसने ऐसा न सोचा कि महावीर का धर्म स्वीकार करने से मुझ पर आफत आई है, अत हे महावीर मेरी रक्षा करो-बचाओ ।

आज तो भ्रम से उत्पन्न डाकिन–भूतो का भी भय होता है लेकिन कामदेव सामने खडे हुए भूत को देखकर भी नही डरा। पिशाच बडा भयानक रूप धारण किये हुए था। हाथ मे तलवार लिए हुए था। टुकडे करने की बात कह रहा था। फिर भी कामदेव का एक रोम भी विचलित न हुआ, यह कितने आश्चर्य की बात है ? कदाचित् आप लोग यो दलील दे कि हम गृहस्थ हैं, अत इतने मजबूत नही रह सकते। क्या कामदेव गृहस्थ नही थे ? वे नहीं डरते थे तो आप क्यो डरते हो ? यह कहो कि हमे अभी आत्मा और शरीर के तलवार–म्यान के समान पृथक् २ होने मे पूरा विश्वास नही है, कुछ सदेह है।

यह पिशाच मेरे शरीर के टुकडे करना चाहता है किन्तु अनन्त इन्द्र भी मेरे टुकडे नही कर सकते। मैं जानता हूँ और मानता हूँ कि टुकडे शरीर के हो सकते हैं, आत्मा के नही। शरीर के टुकडे होने से आत्मा का कुछ नही बिगडता। शरीर तो पहले से ही टुकडो से जुडा हुआ है।

मैं सब सन्त और सतियो से यह बात कहना चाहता हूँ कि यदि हमारे श्रावको मे भूत-पिशाच आदि का भय रहा तो यह हमारी कमजोरी होगी। विद्यार्थी के परीक्षा मे फेल होने पर जैसे अध्यापक को शर्मिन्दा होना पडता है, वैसे ही श्रावक–श्राविकाओ मे भय होने पर साधुओ को शर्मिदा होना चाहिए। भगवान् महावीर का धर्म प्राप्त करने के बाद भय खाने की बात नही रहती।

कामदेव ने हसते हुए कहा—ले शरीर मे टुकडे कर

डाल। कामदेव मन मे विचार करता है कि इस पिशाच ने धर्म नही पाया है, अत यह ऐसा काम करना चाहता है। मैंने धर्म प्राप्त किया है, अत इस अग्नि-परीक्षा मे उतर कर अपने धर्म को शुद्ध-स्वच्छ बनालू । जैसे इसने मुझ पर निष्कारण वैर भाव लाना अपना धर्म मान रखा है, वैसे मैंने भी निष्कारण वैरियो पर क्रोध न करना अपना धर्म मान रखा है। अधर्म वैर करना सिखाता है और धर्म प्रेम करना। यदि मैं शान्त-स्वभाव छोड कर अशान्त बन जाऊ तो इस मे और मुझ मे क्या अन्तर होगा ?

दैवी और आसुरी दो प्रकार की प्रकृतिया होती हैं। यहा इन दोनो की परस्पर लडाई हो रही है । गीता मे इन दोनो प्रकृतियो का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

> दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोध पारुष्यमेव च ।
> अज्ञान चाभिजातस्य पार्थ ! सपदमासुरीम् ॥

दभ दर्प, अभिमान, क्रोध, निर्दयता और अज्ञान ये छ आसुरी प्रकृति के लक्षण है । जिस मे ये बातें पाई जाती हो, वह असुर है । दैवी प्रकृति के लक्षण निम्न प्रकार हैं ।

> अभय सत्वसशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थिति ।
> दान दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥
> अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्याग शान्तिरपैशुनम् ।
> दया भूतेष्वलोलुप्त मार्दव ह्रीरचापलम् ॥
> तेज क्षमाधृति शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
> भवन्ति सम्पद दैवीमभिजातस्य भारत ॥

आज तो भ्रम से उत्पन्न डाकिन-भूतो का भी भय होता है लेकिन कामदेव सामने खडे हुए भूत को देखकर भी नही डरा। पिशाच बडा भयानक रूप धारण किये हुए था। हाथ मे तलवार लिए हुए था। टुकडे करने की बात कह रहा था। फिर भी कामदेव का एक रोम भी विचलित न हुआ, यह कितने आश्चर्य की बात है? कदाचित् आप लोग यो दलील दे कि हम गृहस्थ है, अत इतने मजबूत नही रह सकते। क्या कामदेव गृहस्थ नही थे? वे नहीं डरते थे तो आप क्यो डरते हो? यह कहो कि हमे अभी आत्मा और शरीर के तलवार-म्यान के समान पृथक् २ होने मे पूरा विश्वास नही है, कुछ सदेह है।

यह पिशाच मेरे शरीर के टुकडे करना चाहता है किन्तु अनन्त इन्द्र भी मेरे टुकडे नही कर सकते। मैं जानता हूँ और मानता हूँ कि टुकडे शरीर के हो सकते हैं, आत्मा के नही। शरीर के टुकडे होने से आत्मा का कुछ नही बिगडता। शरीर तो पहले से ही टुकडो से जुडा हुआ है।

मैं सब सन्त और सतियो से यह बात कहना चाहता हूँ कि यदि हमारे श्रावको मे भूत-पिशाच आदि का भय रहा तो यह हमारी कमजोरी होगी। विद्यार्थी के परीक्षा में फैल होने पर जैसे अध्यापक को शर्मिन्दा होना पडता है, वैसे ही श्रावक-श्राविकाओ मे भय होने पर साधुओ को शर्मिन्दा होना चाहिए। भगवान् महावीर का धर्म प्राप्त करने के बाद भय खाने की बात नही रहती।

कामदेव ने हसते हुए कहा—ले शरीर के टुकडे कर

डाल। कामदेव मन मे विचार करता है कि इस पिशाच ने धर्म नही पाया है, अत यह ऐसा काम करना चाहता है। मैंने धर्म प्राप्त किया है अत इस अग्नि-परीक्षा मे उतर कर अपने धर्म को शुद्ध-स्वच्छ बनालू । जैसे इसने मुझ पर निष्कारण वैर भाव लाना अपना धर्म मान रखा है, वैसे मैंने भी निष्कारण वैरियो पर क्रोध न करना अपना धर्म मान रखा है। अधर्म वैर करना सिखाता है और धर्म प्रेम करना। यदि मैं शान्त-स्वभाव छोड कर अशान्त बन जाऊ तो इस मे और मुझ मे क्या अन्तर होगा ?

दैवी और आसुरी दो प्रकार की प्रकृतिया होती है। यहा इन दोनो की परस्पर लडाई हो रही है । गीता मे इन दोनो प्रकृतियो का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

> दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोध पारुष्यमेव च ।
> अज्ञान चाभिजातस्य पार्थ ! सपदमासुरीम् ।।

दभ दर्प, अभिमान, क्रोध, निर्दयता और अज्ञान ये छः आसुरी प्रकृति के लक्षण हैं। जिस मे ये बाते पाई जाती हो, वह असुर है। दैवी प्रकृति के लक्षण निम्न प्रकार हैं।

> अभय सत्वसशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थिति ।
> दान दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥
> अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्याग शान्तिरपैशुनम् ।
> दया भूतेष्वलोलुप्त मार्दव ह्रीरचापलम् ।।
> तेज क्षमाधृति शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
> भवन्ति सम्पद दैवीमभिजातस्य भारत ।।

दैवी प्रकृति का पहला लक्षण अभय है । जो स्वय निर्भय होना है, वही दूसरो को अभयदान दे सकता है । भय मे कापने वाला व्यक्ति दूसरो को क्या अभयदान देगा ? कामदेव के समान आत्मा और शरीर को जुदा मानने और विश्वास करने वाले ही दूसरो को निर्भय बना सकते हैं । कामदेव ने अपना अक्रोध रूप धर्म नही छोडा । अक्रोध धर्म को छोडना ऐसा समझा जैसे कोढ रोग को लेकर अपना स्वास्थ्य दान करना, अथवा चिन्तामणि रत्न देकर बदले मे कंकड लेना । कामदेव मे ऐसी दृढता थी लेकिन आज आप लोग दर दर के भिखारी बन रहे हो । कही किसी देव को पूजते हो और कही किसी को । स्त्रियो मे यह बात विशेष रूप से पाई जाती है । यदि हम साधु लोग भी मत्र-तत्रादि का ढोग करने लगें तो बहुत लोग हमारे पास उमड पडे किन्तु यह साधु का मार्ग नही है। हम तो भगवान् महावीर का धर्म सुनाते हैं, जिसे पसन्द पडे, वह ले ले और जिसे पसन्द न पडे वह न ले ।

पिशाच ने भौतिक भय से कामदेव को डिगते न देख कर उसके शरीर के टुकडे २ कर डाले । कामदेव इस अवस्था मे भी यह मानता रहा कि मुझे वेदना नही हो रही है किन्तु जन्म-जन्म की वेदना जा रही है ।

ऑपरेशन करते समय शरीर मे वेदना होती है किन्तु जो लोग दृढचित्त होते हैं, वे उस समय भी प्रसन्न रहते हैं। जब डाक्टर ने मेरे हाथ का ऑपरेशन करने के लिए कहा तब मैंने अपना हाथ उसके सामने लम्बा कर दिया । उसने क्लोरोफार्म सुघाने के लिए कहा लेकिन मैंने सूघने से

इन्कार कर दिया । विना क्लोराफार्म के ही मेरा ऑप-रेशन हुआ और जो वेदना हुई उसे मैंने प्रसन्नतापूर्वक सहन किया । सुना है, फ्रास मे एक आदमी ने यह देखने के लिये कि नसें काटने पर कैसी वेदना होती है, अपनी नसें काट डाली। नसें काटते २ वह मर गया मगर अन्त तक वह हसता ही रहा।

कामदेव श्रावक भी शरीर के टुकडे होते समय हसता ही रहा। आखिर देव हार गया और पिशाच रूप छोडकर दैवी रूप प्रगट किया। कामदेव ने अपने अक्रोध धर्म के जरिये पिशाच को देव बना लिया। भगवान् महावीर देवाधिदेव हैं। अनन्त इन्द्र मिल कर भी उनका एक रोम नही डिगा सकते। आप ऐसे भगवान् के शिष्य हैं। अत कुछ तो दृढता रखिये। जो बात सागर मे होती है, थोडे वहुत रूप मे वह गागर मे भी होनी चाहिए। भगवान् का किंचित् गुण भी हम मे आये तो हम निभय बन सकते हैं।

देवता कामदेव से कहने लगा कि इन्द्र ने आप के विषय मे जो कुछ कहा था, वह ठीक निकला। मैंने आपके शरीर के टुकडे क्या किये, मेरे पाप के ही टुकडे कर डाले। जिस प्रकार लोहे की छूरी पारस के टुकडे करते हुए स्वय सोने की बन जाती है, उसी प्रकार आप की धर्म दृढता देख कर मेरे पाप विनष्ट हो गये है। मैं अब ऐसे काम कभी नही करूगा।

कहने का साराश यह है कि श्रेणिक राजा अनेक रत्न का स्वामी था मगर एक धर्मरूप रत्न की उसमे कमी

थी । वह जलतारिणी, उपद्रवादिनाशिनी विद्याएं जानता था किन्तु धर्मरूप रत्न उसके पास न था और इसी से वह अनाथ था ।

आज अनाथ उसे कहा जाता है जिसका कोई रक्षक न हो, जिसे कोई खाने पीने की वस्तुएं देने वाला न हो। और जिसका कोई रक्षक हो तथा खाने-पीने की वस्तुएं देने वाला हो, वह सनाथ गिना जाता है। किन्तु महा निर्ग्रन्थ अध्ययन नाथ और अनाथ की व्याख्या कुछ और प्रकार से करता है, यह बात अवसर होने पर बताई जायगी। सुदर्शन चरित्र—

> जिनपुर सेठ श्रावक दृढ धर्मी, यथा नाम जिनदास ।
> अरहदासी नारी स्वामी रूप शील गुणवान रे ।।धन० ।।५।।
> दास सुभग बालक अति सुन्दर गौए चरावाहार ।
> सेठ प्रेम से रखे नेम से करे सार सभाल रे ।।धन० ।।६।।

कथा में सुदर्शन का जो पूर्व-भव का चरित्र बताया गया है, उससे अपने चरित्र को सुधारने की शिक्षा लेनी चाहिए । सुदर्शन के परिचय के साथ उसके मा बाप का भी परिचय दिया गया सो तो अच्छी बात है मगर उसके पूर्व-भव का परिचय देना आजकल के तरुण युवकों को अच्छा नहीं लगता । आज के बहुत से युवकों को पूर्वभव की बातों पर विश्वास नहीं बैठता । उन्हें विश्वास हो या न हो किन्तु यह बात निश्चित है कि पूर्वभव है, पुनर्जन्म है । शास्त्रीय पुराणों के साथ २ पुनर्भव की पुष्टि के लिए कई प्रत्यक्ष प्रमाण भी मिले है । कई बच्चों को जातिस्मरण ज्ञान हुआ है और उन्होंने अपने पूर्वजन्म के वृत्तान्त बताये हैं ।

चम्पा नगरी मे जिनदास नाम का एक सेठ रहता था। उसकी पत्नी का नाम अर्हद्दासी था। दोनो की जोडी कैसी थी, इसका वर्णन है मगर अभी कहने का समय नही है। जहा एक अग मे धर्म हो और दूसरे मे न हो, वहा जीवन अधूरा रहता है। आपके दोनो हाथ हैं और इनकी सहायता से आप सब काम कर सकते हैं, फिर भी आपने विवाह किया है, दो हाथ के चार हाथ बनाये है। विवाह करके आप चतुर्भुज-भगवान् बन गये है। चतुर्भुज भगवान् को भी कहते हैं। अर्थात् विवाह करके आदमी अपूर्ण से पूर्ण बन जाता है। गृहस्थ जीवन विवाह करने से पूर्ण बनता है। यदि कोई विवाह करके चतुर्भुज के बजाय चतुष्पद बन जाय तो कैसा रहे ? बहुत से लोग विवाह करके जो काम अकेले से शक्य न था उसमे पत्नी की सहायता मे सफल हो गये। भगवान् मे लीन हो जाओ, यह चतुर्भुज बनना है और यदि ऐसा न करके ससार के विषय-विकार या भोगविलास मे ही फसे रहे तो चतुष्पद बन जायेंगे।

जिनदास और अर्हद्दासी धर्म के काम इस प्रकार करते थे मानो ईश्वर के अवतार हो। एक दिन अर्हद्दासी के मन मे विचार हुआ कि आज हम दोनो इस घर मे धर्म करने वाले हैं मगर भविष्य मे हमारे पश्चात् कौन धर्म करेगा ? हमारे धर्म का उत्तराधिकारी कोई होना चाहिए। पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो मे धर्म की लगन और श्रद्धा अधिक होती है। अर्हद्दासी इस चिंता मे डूब गई। चिन्तावस्था मे सब कुछ बुरा लगने लगता है। बाहर से सेठ आये और सेठानी से पूछा कि आज उदास क्यो बैठी हो ? सेठानी ने चिन्ता का कारण व्यक्त नही किया। अपने भावो को छिपाये रही।

सेठ उसकी चिन्ता मिटाने और प्रसन्न करने के लिए उसे बाग बगीचे मे ले गये, खेल तमाशे दिखाये किन्तु कोई परिणाम न निकला । सेठानी की चिन्ता न मिटी ।

बुद्धिमान लोगो का कहना है कि स्त्री को मुर्झाई हुई न रखना चाहिए । स्त्री को मुर्झाई हुई रखना, अपने अग को ही मूर्छित रखना है । सेठ ने सेठानी को राजी रखने के अनेक प्रयत्न किए मगर सब व्यर्थ गये । अत मे सेठ ने सोचा कि दर्द कुछ और है और इलाज कुछ और हो रहा है । सेठानी से चिन्ता का कारण पूछा । सेठानी से अब न रहा गया । विचार करने लगी कि मेरे पति मेरे सुख दु ख के साथी है, अत इनके सामने अपनी चिन्ता प्रकट करनी चाहिए । सेठानी ने कहा, मुझे कपडे लत्ते और गहने आभूषण की चिन्ता नही है। जो स्त्रिया ऐसी चिन्ता करती हैं, वे जीवन का अर्थ नही समझती । मुझे तो यह चिन्ता है कि आपके जैसे योग्य पति के होते हुए भी हमारे घर में हमारा उत्तराधिकारी घर का रखवाला नही है । मैं अपना कर्त्तव्य पूरा न कर सकी । कुलदीपक के बिना सर्वत्र अघेरा है ।

सेठानी का कथन सुनकर सेठ विचार करने लगे कि मैं जिनभक्त हूँ । सतान प्राप्ति के लिए नही करने योग्य काम मैं नहीं कर सकता । योग्य उपाय करना बुद्धिमानो का काम है । सेठानी से कहा-प्रिये ! हम लोग जिनेश्वर देव के भक्त हैं । पुत्र होना, न होना हमारे हाथ की बात नही हैं । यह बात भाग्य के अधीन है । ऐसी चिन्ता करना अपने नाम को लजाना है । अत चिन्ता छोड कर अपनी

सपत्ति दान आदि कामो मे लगाओ, जिससे सतान विषयक अन्तराय टूटनी होगी तो टूट जायेगी। हमारा धन किसी अयोग्य हाथ मे न चला जाय, अत अपने हाथो से ही पात्र कुपात्र का ख्याल रख कर दान दे। सेठ ने सेठानी की चिन्ता मिटा दी और दोनो पहले की अपेक्षा अधिक धर्म-करणी करने लगे। इनके घर मे रहने वाला सुभगदास ही भावी सुदर्शन है। दास क्या करके सुदर्शन बनता है, इसका विचार आगे है।

राजकोट
८—७—३६ का व्याख्यान

९ : श्रेणिक को धर्म प्राप्ति

"श्री महावीर नमू वरनाणी ''।"

यह चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी की प्रार्थना है। एक एक तार को सुलझाते सुलझाते सारा गुच्छा सुलझ जाता है और एक एक के उलझते सारी वस्तु उलझ जाती है। यह आत्मा इस ससार मे उलझ रहा है। इसको सुलझाने तथा सत्य सरल बनाने का मार्ग परमात्मा की प्रार्थना करना है। भक्तिमार्ग आत्मा की उलझन मिटा देता है।

अब हम यह देखें कि आत्मा की उलझन कौन सी है? आत्मा द्रव्य को भूल कर पर्याय की कद्र करता है, यही इस की उलझन है। आत्मा घाट तो देखता है मगर जिस सोने का यह घाट बना है उसको नही देखता। सोने की कद्र नही करता, सोने के बने हुए विविध प्रकार के घाट (रचनाविशेष) की कद्र करता है। ससार व्यवहार मे भी यदि कोई सोने को न देख कर केवल घाट को ही देखे और बनावट के आधार से ही क्रय विक्रय करने लगे तो उसका दिवाला निकल जायगा। चतुर व्यक्ति घाट की तरफ गौण

रूप से देखेगा । उसकी नजर सोने की तरफ होगी कि यह सोना कितना शुद्ध है । आप लोग भी दागीने खरीदते वक्त केवल डिजाइन (घाट) की तरफ नही देखेंगे किन्तु सोने के टच देखोगे । द्रव्य की तरफ नजर रखोगे । वस्तु का मूल्य द्रव्य के आधार पर होता है । बनावट मुख्य आधार नही होती, जबकि बनावट भी रखनी पडती है । बनावट का ख्याल न रखने से घर की श्रीमती जी के नापसन्द करने पर वापस बाजार का चक्कर लगाना पडता है ।

ज्यो कञ्चन तिहु काल कहिजे, भूषण नाम अनेक ।
त्यो जग जीव चराचर योनि, है चेतन गुण एक ।।

ज्ञानी कहते हैं कि केवल पर्याय की तरफ ही मत ख्याल रखो मगर द्रव्य को भी देखो । कहा है—

जिस प्रकार सुवर्ण हर समय सुवर्ण ही कहा जाता है चाहे उसके बने आभूषणो के कितने ही नाम क्यो न रख लिए गये हो, उसी प्रकार चाहे जिस योनि का जीव हो किन्तु आत्मा सब मे समान है । जीव की पर्याय कोई भी हो, चाहे देव हो, मनुष्य हो, तिर्यञ्च हो, नारक हो सब मे आत्मा समान है । आपने देव और नारक जीवो को आखो से नही देखा है, शास्त्र मे सुना है । किन्तु मनुष्य और तिर्यञ्च जीवो को प्रत्यक्ष देख रहे हो । ये सब पर्याय हैं । आत्मा की यही भूल है कि वह इन पर्यायो को देखता है मगर इन मे जो चेतन द्रव्य रहा हुआ है, उसकी तरफ लक्ष्य नही देता । घाट पर मोहने वाली स्त्री जैसे पीतल के दागिने खरीद कर अपनी भूल पर पछताती है, उसी प्रकार पर्याय

का ख्याल करने वाला द्रव्य की कद्र नहीं करके पछताता है।

आत्मा इस प्रकार की भूल न करे, अत ज्ञानियो ने अहिंसा व्रत बतलाया है। सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि व्रत इसी के लिए हैं। अहिंसा व्रत में यही बात है कि अपनी आत्मा के समान सब जीवो को मानो। 'अप्पसम मनिज्जा छप्पि काय' छहों काया के जीवो को अपनी आत्मा के समान मानो। पर्याय के कारण भेद मत करो। जब तक अपनी आत्मा के समान सब जीवो को नही माना जाता, तब तक अहिंसा व्रत का पालन नही हो सकता। जिसे पूर्ण अहिंसा का पालन करना होगा, उसे पर्याय की तरफ कतई ख्याल न रख कर केवल शुद्ध चेतन रूप द्रव्य का ख्याल रखना होगा। भगवद्गीता मे भी कहा है कि—

> *विद्याविनयसम्पन्ने, ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।*
> *शुनि चैव श्वपाके च, पण्डिता समदर्शिन ॥*

पडित अर्थात् ज्ञानी, ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ता और चाण्डाल सब पर नजर रखते हैं। सब में शुद्ध चेतन द्रव्य को देखते हैं। उनकी विविध प्रकार की शुद्ध-अशुद्ध योनियो का ख्याल नही करते। सब जीवो की समान रूप मे सेवा करते हैं। पर्याय की तरफ देखने की आदत को मिटाने से आत्मा परमात्मा बन जायगी। जो भगवान् महावीर को मानता है, उसे मनुष्य, स्त्री बालक, वृद्ध, रोगी, नीरोगी, पशु-पक्षी, साप बिच्छू, कीडी, मकोडी आदि योनियो का ख्याल किये बिना सब की समान रूप से रक्षा करनी

चाहिए । जो ऐसा नही मानता, वह भगवान् महावीर को भी नही मानता । महावीर को मानना और उनकी वाणी को न मानना, यह नही हो सकता । भगवान् स्वय कहते हैं कि चाहे कोई व्यक्ति मेरा नाम न ले किन्तु वह यदि मेरी वाणी को मानता है, मेरे कथनानुसार अपनी आत्मा के समान सब जीवो को मानता है तो वह मुझे प्रिय है । वह मेरा ही है । जो छ काय के जीवो को आत्मतुल्य नही मानता, वह मेरा नाम लेने का भी अधिकारी नही है ।

आप से अधिक न बन सके तो कम से कम छहो कायो के जीवो को खुद की आत्मा के समान मानिये । पर्याय-दृष्टि गौण करके द्रव्य-दृष्टि को मुख्य बनाइये । सब का आत्मा समान है और आत्मा तथा शरीर अलग २ है । गीता मे श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा—

> बासासि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
> तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि सयाति नवानि देही ॥

जिस प्रकार मनुष्य पुराने कपडे उतार कर नये पहन लेता है, उसी प्रकार आत्मा पुराने शरीर को छोड कर नया शरीर धारण करता है । शरीर रूप पर्याय बदलता रहता है मगर आत्मा सब अवस्थाओ मे कायम रहता है । कपडे बदल लेने मात्र से मनुष्य नही बदल जाता । इसी प्रकार शरीर के बदल जाने से आत्मा नही बदल जाती । नाटक मे पुरुष स्त्री का साग बनाता है और स्त्री पुरुष का किन्तु साग बदल लेने से न तो पुरुष स्त्री बन जाता है और न स्त्री पुरुष हो । साधारण मति वाले लोग साग बदल जाने से भ्रम मे

लिखी जाती या न लिखी जाती, इसका भी पता नहीं क्योंकि शास्त्रकार धर्ममार्ग पर आये हुए या आने वालों का ही शास्त्र मे जिक्र किया करते हैं। प्रसग मे दूसरो का वर्णन आये, यह दूसरी बात है। श्रेणिक को केवल समकित रत्न ही मिला था, श्रावकपन प्राप्त नही हुआ। फिर भी वह भविष्य मे पद्मनाथ नामक तीर्थंकर होगा। आप लोग धर्म क्रियाए करते हैं किन्तु यदि दृढ श्रद्धा विश्वास के साथ करो तो मोक्ष के लिए उपयोगी होगी। बिना समकित या श्रद्धा के की हुई क्रियाए ऐसी ही हैं, जैसे कि बिना अक वाली बिंदिया। बिना अक वाली बिंदी किस काम की? क्रोध, मान और लोभ को हल्का बना कर आन्तरात्मा में जागृति लाओ और धर्म-क्रियाए करो तो आनन्द ही आनन्द है।

श्रेणिक राजा यद्यपि धर्म क्रियाए न कर सका मगर वह तत्व का जिज्ञासु था। उसकी रानी चेलना राजा चेडा की पुत्री थी। चेडा राजा के सात पुत्रिया थी। सातो ही सतिया हुई हैं। चेलना के रग रग मे धर्म भावना भरी हुई थी। चेलना इस बात की फिक्र मे रहती थी कि मेरे पति को कब और किस प्रकार समकित रत्न प्राप्त हो? मैं कब समकित धारी धर्मात्मा राजा की रानी कहाऊ? इधर श्रेणिक राजा यह सोचा करता था कि मेरी रानी यह धर्म का ढोग छोड कर कब मेरे साथ मनमाने मौज-मजा उडाय। दोनो की अलग अलग इच्छाए थी। कभी कभी श्रेणिक की तरफ से चेलना के धर्म की मीठी परीक्षा भी हुआ करती थी। जो धर्म पर दृढ रहता है, वह अपना सिर तक दे देता है मगर धर्म को नही छोडता। दोनो मे धर्म सम्बन्धी चर्चा भी हुआ करती थी किन्तु वह चर्चा कभी क्लेश या मनमुटाव

का रूप धारण न करती । दूसरे पर अपने धर्म का प्रभाव डालने के लिये बहुत नम्रता और सरलता की जरूरत होती है। झगडे टटे से दूसरे पर हमारे धर्म का प्रभाव न पडेगा। हमारे आचरण ही ऐसे होने चाहिये कि जिन्हे देख कर सामने वाला हमारे धम को अपना ले। हमारे आचरण धर्म-विरुद्ध हो और हम धर्म की बाते बघारते रहे तो कोई भी हमारे फन्दे मे न फसेगा । हमारा चरित्र ही जीता जागता धर्म का नमूना होना चाहिए ।

चेलना के धर्म की परीक्षा करते करते एक बार श्रेणिक जिद्द पर चढ गया। एक महात्मा को देखकर चेलना से कहने लगा, देखो तुम्हारे गुरु कैसे हैं, जो नीची नजर रख-कर चलते हैं । कोई मार पीट दे तो भी कुछ नही बोलते । मेरे राज्य में यह कानून है कि कोई किसी को मार पीट दे तो उसे सजा दी जाती है किन्तु ये तुम्हारे धर्मगुरु तो फरियाद ही नही करते । गुरु के कायर होने से उसके अनु-यायी मे भी कायरता आती है । हमारे गुरु तो वीर होने चाहिये । ढाल तलवार बाध कर घोडे पर सवार होने वाले बहादुर व्यक्ति हमारे गुरु होने चाहिए ।

चेलना ने उत्तर दिया कि मेरे गुरु कायर नही हैं किन्तु महान् वीर हैं । मैं कायर की चेली नही हू, वीर की चेली हूँ । मेरे गुरु की वीरता के सामने आप जैसे सौ वीर भी नही टिक सकते । आपके बडे २ सेनाधिपतियो को भी कामदेव जीत लेता है किन्तु हमारे गुरु ने इस काम देव को भी अपने काबू मे कर रखा है । जो लाखो को जीतने वाला है, उसको जीतने मे कितनी वीरता की

आवश्यकता होती है, इसका जरा विचार कीजिये। इनके सामने अप्सरा भी आ जाय तो ये विचलित नही होते। यह बात तो एक बच्चा भी समझ सकता है कि जो लाखो को जीतने वाले को भी जीत लेता है, वह कितना बहादुर होगा।

श्रेणिक राजा ने सोचा कि यह ऐसे मानने वाली नही है। इसके गुरु के पास एक वेश्या को भेजू और वह उन्हें भ्रष्ट कर दे तब यह मानेगी। चेलना यह बात समझ गई कि इस वक्त धर्म की कठिन परीक्षा होने वाली है। वह परमात्मा से प्रार्थना करने लगी कि हे प्रभो! मेरी लाज तुम्हारे हाथ मे है। प्रार्थना करके वह ध्यान मे बैठ गई।

राजा ने वेश्या को बुला कर हुक्म दिया कि उस साधु के स्थान पर जाकर उसे आचरण-भ्रष्ट कर आ। तुझे मुह मागा इनाम दिया जायगा। वेश्या बन-ठन कर साथ मे कामोद्दीपक सामग्री लेकर साधु के स्थान पर गई। साधु ने स्त्री को अपने धर्मस्थान पर देख कर कहा कि खबरदार, यहा रात के समय स्त्रिया नही आ सकती, ठहर भी नही सकती। यह गृहस्थ का घर नही है, धर्मस्थान है।

वेश्या ने उत्तर दिया, महाराज आपकी बात वह मान सकती है, जो आपकी भक्त हो। मैं तो किसी और ही मतलब से आई हूँ। मैं आपको आनन्द देने आई हूँ। यह कह कर वेश्या साधु के स्थान मे घुस गई। साधु समझ गये कि यह मुझे भ्रष्ट करने आई है। यद्यपि मैं अपने शील-धर्म पर दृढ हूँ तथापि लोकापवाद का ख्याल रखना जरूरी है। बाहर जाकर कहीं यह यो न कह दे कि मैं साधु को भ्रष्ट

कर आई हूँ। कथा मे यह भी कहा है कि चेलना रानी ने इस बात की परीक्षा कर ली थी कि वह साधु लब्धिधारी है। उसने सब से यह कह रखा था कि कोई कच्चा साधु यहा न आये। ये साधु यहा आये थे, अत उसे विश्वास था कि ये लब्धिधारी हैं।

महात्मा ने अपने प्रभाव मे विकराल रूप धारण कर लिया। यह देख कर वेश्या घबराई। वह कहने लगी, महाराज क्षमा करो। मैं अपनी इच्छा से नही आई हूँ। मुझे तो श्रेणिक राजा ने भेजा है। मैं अभी यहा से भाग जाती मगर बाहर ताला लगा है, अत विवशता है। आप तो चीटी पर भी दया करने वाले हो। मुझ पर दया करो।

उन महात्मा ने अपना वेष दूसरा ही बना लिया था। शास्त्र मे कारणवश वेष बदलने का लिखा है। साधु लिंग को बदलना अपवाद-मार्ग मे है। चरित्र की रक्षा तो उस समय भी की जाती है।

इधर यह काड हुआ, उधर श्रेणिक ने चेलना से कहा कि जिन गुरु की प्रशसा के तुम पुल बाध रही थी, जरा मेरे साथ चल कर उनके हाल तो देखो। वे एक वेश्या को लिये बैठे हैं। रानी ने कहा, बिना आखो से देखे मैं इस बात को नही मान सकती। अगर सचमुच मेरे गुरु वेश्या को लिये बैठे मिलेगे तो मैं उन्हे गुरु नही मानूगी। मैं सत्य की उपासिका हूँ। राजा चेलना को लेकर साधु के स्थान पर आया और किवाड खोले। किवाड खोलते ही, वह वेश्या इस प्रकार भगी जैसे पिजडे का द्वार खुलने पर पक्षी भागता है। भागते

हुए वह वेश्या कह गई कि महाराज ! आप मुझ से दूसरे काम ले सकते हैं मगर ऐसे तप तेजधारी महात्मा के पास कभी मत भेजियेगा । मैं इनकी दया के प्रभाव से ही अपने प्राण बचा पाई हूँ ।

रानी ने यह बात सुन कर राजा श्रेणिक से कहा कि महाराज यह तो आप की करतूत मालूम पडती है । मैं तो पहले ही कह चुकी हूँ कि मेरे धर्मगुरु ऐसा कभी नही कर सकते । चलिये, उनके दर्शन करें । अन्दर सुविहित जैन वेष-धारी साधु न थे किन्तु दूसरा वेष पहिने हुए साधु थे । रानी ने कहा, मैं द्रव्य-भाव दोनो दृष्टि से जो साधु होता है, उसे सच्चा साधु मानती हूँ । ये रजोहरण मुखवस्त्रिका-धारी नही हैं, अत मेरे धर्मगुरु नही हैं । राजा बडा लज्जित हुआ । मन मे विचार किया कि रानी ठीक कहती है । अब मुझे इस धर्म के तत्त्व जानने चाहिए । यही से राजा को जैन धर्म के तत्वो को जानने की रुचि जागृत हुई ।

यद्यपि राजा श्रेणिक राजमहलो मे रहता था फिर भी वह जगल की खुशनुमा हवा लेने के लिए जाया करता था। वह यह बात समझता था कि ताजा हवा के बिना ताजा जीवन नही बनता । शास्त्र मे विहार यात्रा शब्द का प्रयोग किया गया है । जैसी यात्रा होती है, वैसा ही उसका फल भी होता है । धर्म यात्रा, धन यात्रा, शरीर यात्रा आदि जुदी-जुदी यात्राओ का फल जुदा २ है । धर्म की यात्रा में धर्म की और धन की यात्रा मे धन की रक्षा की जाती है। इसी प्रकार शरीरयात्रा का अर्थ शरीर की रक्षा करना है।

आज शरीर यात्रा के नाम से ऐसे काम किये जाते

है कि जिनसे शरीर अधिक बिगडता है। आप लोग बाहर घूमने जाते हो मगर आपकी यह यात्रा निकम्मी और व्यर्थ होती है। इसका जरा विचार करो। आज शहरो मे बिना पाखाने के कोई मकान नजर नही आता, जब कि पुराने जमाने मे अच्छे अच्छे घरो मे भी पाखाने नही होते थे। शक्ति की कमी के कारण मैं यहा गोचरी के लिए नही निकला हूँ मगर दिल्ली मे मैं गोचरी के लिए घूमा करता था। मैं जहा कही भी गया, पहले प्रवेश करते ही पाखाने के दर्शन होते थे। बम्बई, कलकत्ता की इस विषय मे क्या दशा होगी, कहा नही जा सकता। एक मारवाडी भाई को यह गाते सुना है कि—

> कलकत्ता नही जाना थारो, कलकत्ता नही जाना।
> जहर खाय मर जाना यारो, कलकत्ता नही जाना॥
> कल का आटा, नल का पानी, चर्बी का घी खाना।यारो कल०।

यह भाई कलकत्ते जाने का इतना विरोधी क्यो बन गया, इसका कारण सोचिये। आज वेजिटेबल घी चला है। गाय रखने मे कई लोग पाप मानते है मगर वेजिटेबल घी खाने मे पाप नही मानते। जीवन यात्रा को लोग भूल गये है। जीवन नष्ट करने की सामग्री बढ रही है।

राजा श्रेणिक जीवन यात्रा के कामो को नही भूला था, अत वह विहार यात्रा के लिए निकला। बहुत से लोग कहते हैं, हम शास्त्र क्या सुनें, उसमे तो तप करके शरीर सुखाने की बातें ही लिखी हैं। मगर यह बात नही है। शास्त्रो मे इहलोक और परलोक तथा शारीरिक और आध्यात्मिक दोना प्रकार की उन्नति की बातें हैं। किसी

हुए वह वेश्या कह गई कि महाराज ! आप मुझ से दूसरे काम ले सकते हैं मगर ऐसे तप तेजधारी महात्मा के पास कभी मत भेजियेगा। मैं इनकी दया के प्रभाव से ही अपने प्राण बचा पाई हूँ।

रानी ने यह बात सुन कर राजा श्रेणिक से कहा कि महाराज यह तो आप की करतूत मालूम पड़ती है। मैं तो पहले ही कह चुकी हूँ कि मेरे धर्मगुरु ऐसा कभी नहीं कर सकते। चलिये, उनके दर्शन करें। अन्दर सुविहित जैन वेष-धारी साधु न थे किन्तु दूसरा वेष पहिने हुए साधु थे। रानी ने कहा, मैं द्रव्य-भाव दोनो दृष्टि से जो साधु होता है, उसे सच्चा साधु मानती हूँ। ये रजोहरण मुखवस्त्रिका-धारी नहीं हैं, अत मेरे धर्मगुरु नहीं हैं। राजा बड़ा लज्जित हुआ। मन मे विचार किया कि रानी ठीक कहती है। अब मुझे इस धर्म के तत्व जानने चाहिए। यही से राजा को जैन धर्म के तत्वों को जानने की रुचि जागृत हुई।

यद्यपि राजा श्रेणिक राजमहलो मे रहता था फिर भी वह जगल की खुशनुमा हवा लेने के लिए जाया करता था। वह यह बात समझता था कि ताजा हवा के बिना ताजा जीवन नही बनता। शास्त्र मे विहार यात्रा शब्द का प्रयोग किया गया है। जैसी यात्रा होती है, वैसा ही उसका फल भी होता है। धर्म यात्रा, धन यात्रा, शरीर यात्रा आदि जुदी-जुदी यात्राओं का फल जुदा २ है। धर्म की यात्रा मे धर्म की और धन की यात्रा मे धन की रक्षा की जाती है। इसी प्रकार शरीरयात्रा का अर्थ शरीर की रक्षा करना है।

आज शरीर यात्रा के नाम से ऐसे काम किये जाते

है कि जिनसे शरीर अधिक बिगडता है। आप लोग बाहर घूमने जाते हो मगर आपकी यह यात्रा निकम्मी और व्यर्थ होती है। इसका जरा विचार करो। आज शहरो मे बिना पाखाने के कोई मकान नजर नही आता, जब कि पुराने जमाने मे अच्छे अच्छे घरो मे भी पाखाने नही होते थे। शक्ति की कमी के कारण मैं यहा गोचरी के लिए नही निकला हूँ मगर दिल्ली मे मैं गोचरी के लिए घूमा करता था। मैं जहा कही भी गया, पहले प्रवेश करते ही पाखाने के दर्शन होते थे। बम्बई, कलकत्ता की इस विषय मे क्या दशा होगी, कहा नही जा सकता। एक मारवाडी भाई को यह गाते सुना है कि—

कलकत्ता नही जाना यारो, कलकत्ता नही जाना।
जहर खाय मर जाना यारो, कलकत्ता नही जाना॥
कल का आटा, नल का पानी, चर्बी का घी खाना।यारो कल०।

यह भाई कलकत्ते जाने का इतना विरोधी क्यो बन गया, इसका कारण सोचिये। आज वेजिटेबल घी चला है। गाय रखने मे कई लोग पाप मानते हैं मगर वेजिटेबल घी खाने मे पाप नही मानते। जीवन यात्रा को लोग भूल गये है। जीवन नष्ट करने की सामग्री बढ रही है।

राजा श्रेणिक जीवन यात्रा के कामो को नही भूला था, अत वह विहार यात्रा के लिए निकला। बहुत से लोग कहते है, हम शास्त्र क्या सुनें, उसमे तो तप करके शरीर सुखाने की बातें ही लिखी हैं। मगर यह बात नही है। शास्त्रो मे इहलोक और परलोक तथा शारीरिक और आध्यात्मिक दोनो प्रकार की उन्नति की बातें हैं। किसी

शास्त्र-विशारद गुरु से शास्त्र सुने जाय तब उनके कान खुले । यद्यपि शास्त्रों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय मुक्ति है, तथापि मुक्ति के लिए उपयोगी जिन जिन बातों की आवश्यकता होती है उनका विशद वर्णन शास्त्रों में है । आप लोग आम के फल खाते हो किन्तु बिना वृक्ष फल के नहीं होता । फल के लिए वृक्ष, डाली, पत्तो आदि पर भी ध्यान देना होगा । संवर और निर्जरा से ही आत्मा का कल्याण होता है, यह बात ठीक है किन्तु इन से सम्बन्धित बातों पर भी शास्त्रकारों ने विचार किया है । शरीर धर्म करणी करने में मुख्य साधन है और इसलिए राजा श्रेणिक विहार यात्रा घूमने के लिए निकला । ग्राम और शहर के भीतरी भाग की अपेक्षा उनके बाहर निकलने पर हवा बदल जाती है । ग्राम शहर की गन्दगी बाहर नहीं होती । शास्त्र में हवा के सात लाख भेद बताये गये हैं । प्रत्येक भेद के साथ प्रकृति का जुदा-जुदा सम्बन्ध है । समुद्री हवा और द्वीप की हवा का गुण अलग अलग है । इसी प्रकार पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व, अधोदिशा की हवाओं के गुण-धर्म जुदा जुदा हैं और मनुष्य पशु पक्षियों पर उनका असर भी जुदा जुदा होता है । जो वायु-विशारद होता है वह हवा का रुख देखकर भविष्य की बातें कह सकता है । बिना सोचे यह कभी न कह डालना चाहिए कि शास्त्रों में तो केवल मुक्ति का ही वर्णन है ।

श्रेणिक राजा नगर से निकल कर विहार यात्रा के लिए मण्डिकुक्षि नामक बाग में आया । शास्त्र के कथनानुसार वह बाग नन्दनवन के समान था । शास्त्र में उसके वृक्ष, फल, फूल, पत्ता आदि का वर्णन है जो यथावसर

बताया जायगा । सुदर्शन-चरित्र—

दास सुभग बालक अति सुन्दर गौए चरावन-हार ।
सेठ प्रेम से रखे नेम से करे सालसभाल ॥धन॥ ॥६॥
एक दिन जगल मे मुनि देखे, तन मन उपज्यो प्यार ।
खडा सामने ध्यान मुनि मे, विसर गया ससार रे ॥धन॥७॥

कल बताया गया था कि सेठानी को पुत्र की चाहना थी । किन्तु पुत्र-प्राप्ति के लिए उन्होने अपना धर्म-कर्म नही छोडा था। धर्म पर कलक लगे, ऐसे काम नही किये। अरणक श्रावक को धन की जरूरत थी, अत वह जहाज लेकर विदेश गया था । समुद्र मे एक देव ने आकर उसे कहा कि अपना धर्म छोड दे अन्यथा जहाज डुबो दूगा । अरणक ने जहाज डूब जाना मजूर किया मगर धर्म न छोडा । पहले के श्रावक धर्म पर बहुत दृढ रहते थे ।

जिनदास सेठ के यहा गौए भी थी । वह उन की रक्षा और पालन-पोषण, अपने शरीर के रक्षण-पोषण की तरह करता था । गायो के लिए प्राचीन भारतीयो की कैसी दृष्टि थी, यह बात सब जानते हैं। कृष्ण महापुरुष थे, यह बात सबको मजूर है । कृष्ण स्वय हाथ मे डडा लेकर गाये चराया करते थे । गायो का महत्त्व समझने के लिए यह बात बडे महत्त्व की है ।

श्री उपासकदशाग सूत्र मे वर्णित दशो श्रावको के यहा हजारो की तादाद मे गायें थी । उसका जीवन गौओ की सहायता के बिना नही चल सकता था । विवाह मे भी गोदान दिया जाता था । गौ के बिना जीवन पवित्र नही

रह सकता । अमेरिका-निवासी लोग गौ की उपयोगिता समझ गये हैं। गौ शब्द का अर्थ पृथ्वी भी होता है । पृथ्वी जैसे सब का आधार है, वैसे गाय भी मनुष्य-जीवन का आधार है । यह बात ध्यान मे रख कर पृथ्वी का नाम भी गौ रखा गया है । पुष्टिकारक घी और दूध दही गाय से ही मिलता है । आज हम कितने पतित हो गये हैं कि ऐसे महान उपकारक पशु की रक्षा करने मे भी असमर्थ बन गये हैं ।

जिनदास ने अपनी गायो की देखभाल करने के लिए सुभग नामक एक ग्वाल-पुत्र को रखा । सुभग को जिनदास आत्मतुल्य मानता था । सुभग प्रतिदिन गायों को जगल मे चराने ले जाता और सध्या को वापस ले आया करता था ।

आज गायो के लिए गोचर-भूमि की चिंता कौन करे ? वकील लोग अन्य कामों के लिए तैयार हो जाते हैं मगर इस काम के लिये कौन तैयार हो ? वकील लोग गायें रखते ही नहीं । अत उन्हे क्यों चिन्ता होने लगी ? जो लोग गायें रखते हैं, उन्हें फरियाद नही करना आता और जिन्हें अपने हकों की रक्षा के लिये फरियाद करना आता है, वे गायें ही नहीं रखते । आज गोचरभूमि की बहुत तगी हो रही है और इससे गोधन कमजोर हो रहा है । कुछ समय पहिले तक जगल प्रजा की चीज माना जाता था । प्रजा को उसमे पशु चराने और लकड़ी आदि लाने का अधिकार था । अब तो जगलात कानून लागू हो गया है, अब गायों को खडी रहने के लिये भी जगह नहीं है ।

सेठ जिनदास सुभग के खाने-पीने ओढने-बिछाने आदि का खयाल रखते थे। उसे शीतताप और वर्षा से बचाने का भी प्रबन्ध करते थे । मुसलमानी मजहब मे कहा गया है कि जिस गृहस्थ के घर मे मनुष्य या पशु-पक्षी दु खी हो वह गृहस्थ पापी है । अपने आश्रित प्राणियो के सुख-दु ख का ख्याल रखना परम कर्त्तव्य है । आजकल पोशाक, फर्नीचर, मोटर और घोडागाडी आदि की जितनी सम्भाल रखी जाती है, उतनी अपने आश्रित मनुष्यो और पशुओ की नही रखी जाती । आश्रितजनो को क्या-क्या कष्ट हैं, उनके कुटुम्ब का भरण पोपण ठीक तरह से होता है या नही आदि बातो का ध्यान यदि मालिक लोग रखा करे तो आपसी सम्बन्ध मीठा हो जाय ।

प्रेम के जरिये किसी से काम लेना अच्छा तरीका है। मारपीट कर जबरदस्ती काम लेना बेहुदा तरीका है । मारपीट कर किसी को नही सुधारा जा सकता। खुद के लडके को भी मारपीट कर नही सुधारा जा सकता, यह बात अब लोग समझने लग गये हैं । पढाने-लिखाने के लिए लडको को मारना-पीटना अब अच्छा नही माना जाता । स्कूलो और पाठशालाओ मे इसकी मुमानियत होती जा रही है ।

पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज कहा करते थे कि मनुष्य को न तो पानी की तरह अति नम्र होना चाहिये और न पत्थर के समान कठोर ही । किन्तु बीकानेरी मिश्री के कुञ्जे के समान होना चाहिये । मिश्री को यदि कोई सिर मे मारे तो उसे चोट लगेगी और खून आ जायगा । लेकिन यदि कोई मिश्री को मुख मे रखेगा तो वह पानी-

रह सकता । अमेरिका-निवासी लोग गौ की उपयोगिता समझ गये हैं । गौ शब्द का अर्थ पृथ्वी भी होता है । पृथ्वी जैसे सब का आधार है, वैसे गाय भी मनुष्य-जीवन का आधार है । यह बात ध्यान मे रख कर पृथ्वी का नाम भी गौ रखा गया है । पुष्टिकारक घी और दूध दही गाय से ही मिलता है । आज हम कितने पतित हो गये हैं कि ऐसे महान उपकारक पशु की रक्षा करने मे भी असमर्थ बन गये हैं ।

जिनदास ने अपनी गायो की देखभाल करने के लिए सुभग नामक एक ग्वाल-पुत्र को रखा । सुभग को जिनदास आत्मतुल्य मानता था । सुभग प्रतिदिन गायो को जगल मे चराने ले जाता और सध्या को वापस ले आया करता था ।

आज गायो के लिए गोचर-भूमि की चिन्ता कौन करें ? वकील लोग अन्य कामो के लिए तैयार हो जाते हैं मगर इस काम के लिये कौन तैयार हो ? वकील लोग गाय रखते ही नही । अत उन्हें क्यो चिन्ता होने लगी ? जो लोग गायें रखते हैं, उन्हें फरियाद नही करना आता और जिन्हें अपने हको की रक्षा के लिये फरियाद करना आता है, वे गायें ही नही रखते । आज गोचरभूमि की बहुत तगी हो रही है और इससे गोधन कमजोर हो रहा है । कुछ समय पहिले तक जगल प्रजा की चीज माना जाता था । प्रजा को उसमें पशु चराने और लकड़ी आदि लाने का अधिकार था । अब तो जगलात कानून लागू हो गया है, अत गायों को खड़े रहने के लिये भी जगह नहीं है ।

सेठ जिनदास सुभग के खाने-पीने ओढने–बिछाने आदि का खयाल रखते थे। उसे शीतताप और वर्षा से बचाने का भी प्रवन्ध करते थे। मुसलमानी मजहब मे कहा गया है कि जिस गृहस्थ के घर मे मनुष्य या पशु-पक्षी दु खी हो वह गृहस्थ पापी है। अपने आश्रित प्राणियो के सुख-दु ख का ख्याल रखना परम कर्त्तव्य है। आजकल पोशाक, फर्नीचर, मोटर और घोडागाडी आदि की जितनी सम्भाल रखी जाती है, उतनी अपने आश्रित मनुष्यो और पशुओ की नही रखी जाती। आश्रितजनो को क्या-क्या कष्ट है, उनके कुटुम्ब का भरण पोषण ठीक तरह से होता है या नही आदि वातो का ध्यान यदि मालिक लोग रखा करे तो आपसी सम्बन्ध मीठा हो जाय।

प्रेम के जरिये किसी से काम लेना अच्छा तरीका है। मारपीट कर जबरदस्ती काम लेना वेहुदा तरीका है। मारपीट कर किसी को नही सुधारा जा सकता। खुद के लडके को भी मारपीट कर नहीं सुधारा जा सकता, यह वात अव लोग समझने लग गये है। पढाने-लिखाने के लिए लडको को मारना–पीटना अव अच्छा नही माना जाता। स्कूलो और पाठशालाओ मे इसकी मुमानियत होती जा रही है।

पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज कहा करते थे कि मनुष्य को न तो पानी की तरह अति नम्र होना चाहिये और न पत्थर के समान कठोर ही। किन्तु वीकानेरी मिश्री के कुन्जे के समान होना चाहिये। मिश्री को यदि कोई सिर मे मारे तो उसे चोट लगेगी और खून आ जायगा। लेकिन यदि कोई मिश्री को मुख मे रखेगा तो वह पानी-

पानी होकर मिठास देगी । मनुष्य को व्यवहार में ऐसा ही बनना चाहिए ।

जिनदास, सुभग के साथ इसी प्रकार का वर्ताव करता था । वह उसे सुधारने का प्रयत्न करता था । सुभग भी उसे अपने पिता के समान मानता था और कभी कभी जिनदास को धर्म क्रियाएं करते हुए देखा करता था । वह अभी धम के समीप नही आया है। एक दिन वह जगल मे गायें चरा रहा था कि वहा एक महात्मा को वृक्ष के नीचे ध्यान लगा कर बैठे हुए देखा । महात्मा और सुभग का सगम किस प्रकार हुआ यह बात अवसर आने पर बताई जायगी। अभी तो यह मे ध्यान रखा जाय कि महात्माओं के दशन से कैसा चमत्कारिक अवसर होता है । मनुष्य बुद्ध का बुद्ध बन जाता है ।

राजकोट

१४-७-३६ का व्याख्यान